THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180685

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—707—25-4-81—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H82 A82C Accession No. P.G.H784

Author अश्क, उपेन्द्रनाथ.

Title चरवाहे. 1948.

This book should be returned on or before the date last marked below

चरवाहे

उपेन्द्रनाथ अश्क

सर्वोदय साहित्य मन्दिर
हुसैनीअलम रोड़, हैदराबाद (दक्षिण).

भारती-भंडार

ग्रन्थ-संख्या—१३०
प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
सं० २००५
मूल्य ॥)

मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, प्रयाग

अपने सब से छोटे भाई
नरेन्द्र के लिये
स्नेह और श्रद्धा के साथ

"..... But we are all men,
In our own natures frail, and capable
Of our flesh, few are angles."

W. Shakespeare

क्रम

चरवाहे—एक अध्ययन

चरवाहे

मैमूना

चुम्बक

चिलमन

चमत्कार

खिड़की

सूखी डाली

इन नाटकों को खेलने से पहले लेखक अथवा प्रकाशक से आज्ञा लेना आवश्यक है।

इन में से कुछ नाटकों के रेडियो संस्करण, उर्दू में, लेखक ने आल इंडिया रेडियो दिल्ली के लिये, अपनी नौकरी के दिनों में तैयार किए थे, जिनको केवल ब्राड-कास्ट करने का अधिकार आल इंडिया रेडियो के पास है, परन्तु वर्तमान हिन्दी रूप में नाटक न केवल उन रेडियो उर्दू संस्करणों से भिन्न हैं वरन् हिन्दी में आते आते बहुत बदल गए हैं। वर्तमान हिन्दी रूप में किसी नाटक को ब्राड-कास्ट करने के लिये लेखक की आज्ञा लेना अनिवार्य्य है।

चरवाहे—एक अध्ययन

"चरवाहे" हिन्दी में अश्क जी के एकांकी नाटकों का तीसरा संग्रह है। छः सात वर्ष पहले इसके अधिकांश नाटक 'हंस', 'वीणा', 'रानी' आदि पत्रिकाओं में छप चुके हैं। किन्तु, यद्यपि उर्दू में न केवल ये, बल्कि इनके बाद लिखे नाटक भी पुस्तक रूप में संग्रहित हो चुके हैं, हिन्दी में कई कारणों से इन्हें पाठकों के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जा सका।

"चरवाहे" से पहले अश्क जी के दो एकांकी संग्रह—"देवताओं की छाया में" और "तूफ़ान से पहले"—हिन्दी में छप चुके हैं। यद्यपि "देवताओं की छाया में" बहुत पहले छपा और "तूफ़ान से पहले" हाल ही में प्रकाशित हुआ है, तो भी दोनों संग्रहों के नाटक बहुत सी बातों में एक दूसरे से मिलते जुलते हैं और "चरवाहे" के नाटकों से सर्वथा भिन्न हैं।

बात वास्तव में यह है कि उन दोनों संग्रहों के नाटक अपने समस्त कला-कौशल, हास्य-व्यंग्य, दुख-सुख, यथार्थ अथवा आदर्श की अभिव्यक्ति के बावजूद सीधे सरल और बोध-गम्य हैं। "लक्ष्मी का स्वागत" का रौशन "अधिकार का रक्षक" के मि० सेठ "पापी" का शान्तिलाल और "तूफ़ान से पहले" का घीसू हमारे जाने माने पात्र हैं। इन नाटकों को पढ़ते पढ़ते पाठक सहसा कह उठता है कि "अरे डाक्टर वर्मा तो हमारे ही नगर के डेंटिस्ट हैं" अथवा—"भई बनवारी जैसी जोंक तो एक बार हमें भी चिमट गई थी" या फिर "यह तौलियों का झगड़ा तो हमारे पड़ौस ही में नित्य होता है....."

नाटकों के पात्र, घटनाएँ यहाँ तक कि सम्भाषण तक हमें जाने पहचाने लगते हैं। उन सभी नाटकों में कुछ ऐसा अलबेलापन है जो

हास्य और व्यंग्य, दुख और सुख के तीर एक ही कमान से अतीव सरलता के साथ छोड़ता चला जाता है।

"चरवाहे" के नाटकों में इस अलबेलेपन अथवा हास्य व्यंग्य, दुख और सुख की अभिव्यक्ति का अभाव नहीं, किन्तु यहाँ अश्क जी ने जो कुछ कहना चाहा है, वह सांकेतिक ढंग से प्रतीकों (Symbols) की सहायता लेकर कहा है। इनकी प्रकट सरलता भी प्रोक्ष में कई स्पष्ट अथवा अस्पष्ट प्रतीक लिए हुए है। इन नाटकों के पात्र जाने माने लगने पर भी कुछ विचित्र से अजनबीपन का आवरण ओढ़े दिखाई देते हैं और कई बार तो वे पात्र, पात्र न रह कर स्वयं प्रतीक अथवा संकेत बन जाते हैं। यही कारण है कि सरल होने पर भी ये कई स्थलों पर बोध-गम्य नहीं रहे। और यहीं ये पहले के नाटकों से भिन्न हैं।

मुझे तीन साढ़े तीन वर्ष पहले की एक घटना याद आती है। हम लोग तब दिल्ली में रहते थे। एक संध्या कुछ क्रय-विक्रय करके, हम फतेहपुरी से ट्राम में बैठे वापस आ रहे थे कि तेलीवाड़ा से एक युवक ट्राम पर सवार हुआ और हमारे सामने की सीट पर आ बैठा। अश्क जी नोट पैड में किसी कविता की पंक्तियाँ लिख रहे थे। उनकी आदत है कि इक्का हो, ट्राम हो अथवा गाड़ी हो, कई बार जब प्रेरणा होती है तो निरन्तर लिखते हैं। उनके इस स्वभाव को कई बार मित्र बनावट (Pose) का नाम देते हैं, पर वे कभी इसकी परवाह नहीं करते। स्वयं मैं कई बार झुँझला उठती हूँ, किन्तु, यद्यपि कई बार वे मेरी इस झुंझलाहट की रक्षा कर लेते हैं परन्तु प्रायः स्वभाव से विवश कापी पेंसिल साथ रख लेते हैं।

वह युवक कदाचित अश्क जी को पहचानता था, पर अश्क जी

उसे न जानते थे। कुछ क्षण वह उन्हें लिखते देखता रहा, फिर जब रुकने पर अश्क जी ने सिर उठाया तो मुस्करा कर, "कहिए कविता लिख रहे हैं," से उसने जो आरम्भ किया तो अपना सारा परिचय देने और यह बताने के पश्चात् कि उसने अश्क जी की कौन कौन सी कृति पढ़ी है और किस किस को वह पसन्द करता है, अन्त में उसने अपनी तान, "लेकिन आप का 'चरवाहे' मेरी समझ में नहीं आया" पर तोड़ी।

'चरवाहे' उसी महीने 'हंस' में छपा था! अश्क जी ने हँस कर पूछा, "आप की समझ में क्या नहीं आया?"

यही कि आप उसमें क्या कहना चाहते हैं? कि वह आपने क्यों लिखा? कि 'हंस' तो प्रगतिशील पत्र है, पर इस नाटक में प्रगतिशीलता कहाँ है?"

हमें 'सराय फूस' ही पर उतर जाना था। अश्क जी ने सामने जाती हुई सड़क की ओर संकेत करते हुए कहा, "मैं वहीं सामने 'भैरो के मन्दिर' के पास रहता हूँ, २२ नम्बर के क्वार्टर में। कभी अवकाश मिले तो आइएगा विस्तार से बातें करेंगे।"

और हम उतर गए।

आज इतने वर्ष बीत जाने पर भी मुझे उस युवक की गोल गलगोथनी सरल आकृति, बड़ी बड़ी जिज्ञासापूर्ण आँखें और अपने आप को गम्भीर आलोचक सिद्ध करने की चेष्टा स्मरण हो आती है। 'चरवाहे' के नाटकों, उसके पात्रों और उसके संकेतों को लेकर ये जिज्ञासाएँ कई बार उठी हैं। यही कारण है कि जहाँ अश्क जी ने उर्दू में अपने चार नाटक-संग्रहों के सम्बन्ध में किसी प्रकार के परिचय की आवश्यकता नहीं समझी, वहाँ उन्होंने 'चरवाहे' पर श्री मुख्तार

सिद्दीकी का लेख भूमिका के रूप में दिया। वह लेख मेरे सामने है। मैंने स्वय भी इन नाटकों को पढ़ा है और लिखे जाने की भिन्न मज़िलों में इन्हें देखा है। जहाँ श्री० मुख्तार सिद्दीकी ने इनमें वे बातें भी ढूँढी जो लिखते समय अश्क जी की कल्पना में भी न थीं, वहाँ वे उन कई बातों से अनभिज्ञ भी रहे, जो इन नाटकों से गहरा सम्बन्ध रखती हैं। अश्क जी का विचार था कि जब ये नाटक हिन्दी में छपेंगे तो वे स्वयं इन पर चन्द पंक्तियाँ लिखेंगे पर वे तो कई महीनों से क्षय-ग्रस्त पड़े हैं और यह काम मेरे जिम्मे आ पड़ा है। मैं, श्री० मुख्तार सिद्दीकी और दूसरे आलोचकों के लेखों तथा अपनी जिज्ञासा और अल्प बुद्धि के बल पर, इन नाटकों तक पहुँचने के लिए, पाठकों का मार्ग सुगम करने का भरसक प्रयास करूँगी। यदि तनिक भी सफल हुई तो अपना यह प्रयास सार्थक समझूँगी, नहीं आशा है सहृदय पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

"चरवाहे" के नाटकों की शैली, इससे पहले और इसके बाद लिखे गए, छोटे अथवा बड़े, सभी नाटकों से भिन्न है। इस संग्रह का प्रत्येक नाटक, जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, चाहे वह सामाजिक हो अथवा रोमेंटिक, दुखद हो अथवा सुखद, व्यंग्य हो अथवा प्रहसन, विभिन्न संकेतों और प्रतीकों की सहायता से आगे बढ़ता है। इन्हीं प्रकट अथवा प्रोक्ष प्रतीकों अथवा संकेतों के पर्दे में विषय-वस्तु का ताना बाना उलझता सुलझता रहता है। ये प्रतीक, जड़ हों अथवा जंगम, प्रायः रंगमंच पर आते हैं लेकिन कई बार प्रोक्ष ही में रह कर नाटक पर भारी प्रभाव डालते हैं।

पहले नाटक 'चरवाहे' ही को लीजिए। इसमें केन्द्रीय पात्र रत्ती है

जो अपने मामा धनी राम के यहाँ पड़ी हुई है। शेष सारे पात्र—डाकू, गोविन्द, राजा उसी की पारद ऐसी प्रकृति के विभिन्न नन्हें नन्हें पलटे दिखाई देते हैं। नाटक इसी पात्र के इर्द गिर्द घूमता है। रत्नी अपने ही कथनानुसार—"रोज़ रोज़ का अपमान, ताने मेहने, व्यंग्य उपहास, तन और मन की क़ैद सहन किए जा रही है" डाके की दुर्घटना और गोविन्द की वीरता और साहस उसकी—अन्तर से स्वतन्त्र किन्तु शरीर से बन्दिनी—आत्मा को झकझोर कर उड़ान के लिए प्रेरित कर देती है और फिर पृष्ठ भूमि में कभी कभी उठने वाला वह चरवाहों का वर्षा और बादल ऐसा गीत—

म्हारा जंगल का सब साज सदा रहती है दूब हरी
सदा रहती है दूब हरी

उसकी सोई हुई स्वच्छन्द आत्मा को सजग कर देता है और एक ओर चरवाहों का गाना (रंगमंच के बाहर सजीवता का प्रतीक) और दूसरी ओर कान्त (स्टेज के अन्दर—निर्जीवता का प्रतीक) उसके निश्चय को पक्का करते हैं। यहीं कान्त की तुलना में रत्नी का चरित्र और भी उभरता है और उसकी मन से स्वच्छन्द पर तन से बन्दिनी आत्मा आतुर होकर पुकार उठती है।

> "ओह! कहीं मैं इन चरवाहों की भाँति स्वतन्त्र—रोज़ रोज़ के तानों मेहनों कोसनों से स्वतन्त्र—इस परवशता और पराधीनता से मुक्त गाती नाचती घूम सकती!"

और वह अनायास अपनी वर्षों से दबी हुई आकांक्षाओं को, अपनी स्वच्छन्द आत्मा के विस्तृत आकाश में उन्मुक्त छोड़ देती है। इस स्वच्छन्द आत्मा का एक प्रतिरूप गोबिन्द है जो गाँव की विस्तीर्ण चरागाहों में अपने ढोर डंगर चराता है और अवसर पड़ने

पर डाकुओं का सामना करने से भी नहीं डरता और दूसरा रूप चरवाहों का वह गाना है जो नाटक में बड़े कोमल स्थलों पर पृष्ठ-भूमि से उभर कर रंगमंच पर छा जाता है।

रत्नी चली जाती है और कान्त अधिक से अधिक दो एक कटु वाक्य कस कर रह जाता है। ये वाक्य एक अनुभवी और युवा होते हुए भी प्रौढ़ मस्तिष्क की उपज तो हैं पर यौवन की तरुण नदी के बहाव को रोकने की सामर्थ्य इनमें नहीं के बराबर है।

इस प्रकार 'चरवाहे' में यदि रत्नी उद्दंड, अल्हड़, परिणाम से निश्चिन्त, उड़ने को, कर्म करने को आतुर यौवन की प्रतीक है तो कान्त उस प्रौढ़ जवानी का जिसने छोटी वयस ही में जीवन की कटुताओं का रस पा लिया है और उनसे समझौता भी कर लिया है।

"नाटक की खूबी" जैसा कि श्री० मुख्तार सिद्दीकी ने लिखा है, "यह है कि जहाँ जवानी के ये दोनों स्पष्ट प्रतिरूप हमारे सामने रंगमंच पर आते हैं, वहाँ नाटक को गति प्रदान करने वाला स्वतन्त्र, चिन्ता रहित यौवन का निश्चयात्मक प्रतीक—चरवाहे—कहीं भी स्टेज पर नहीं आता। केवल उनका रस भरा गीत, पृष्ठ भूमि से उभर, क्षण भर के लिये सम्भाषणों में थरथरा कर, विलुप्त हो जाता है और इतने ही में नाटक को गति प्रदान कर देता है। हद यह है कि गोविन्द भी, जिस के अस्तित्व में चरवाहों की स्वतन्त्रता और साहसिकता मूर्तिमान हो गई है, सारे खेल में कहीं रंगमंच पर नहीं आता।"

किन्तु "चिलमन" में ऐसा नहीं। संकेतों की बाढ़ यहाँ दोहरी है! चिलमन—जिस के सूक्ष्म से प्रतीक पर लेखक ने यह अतीव करुण नाटक सृजा है—रंगमंच के अन्दर अपने जड़ स्वरूप में भी विद्यमान है और स्टेज के बाहर, शशि के रूप में, अपने चेतन स्वरूप में भी।

चरवाहे—एक अध्ययन

इसी महीने यह नाटक गुजराती की प्रसिद्ध पत्रिका "रेखा" में छपा है। इसे पढ़ कर गुजरात के प्रसिद्ध नाटककार तथा कवि श्री० उमाशंकर जोशी ने इसके अनुवादक से कहा, "आ नाटक बेशक घनो सरस छे।" ·····और सचमुच "चिलमन" अपने में धीमे धीमे अनवरत जलते रहने वाले दुख-दीप की हल्की हल्की लेकिन अनश्वर जलन लिये हुए है। सारे खेल में हरि और किरण के चरित्र इस सुन्दरता से उभारे गए हैं कि अवसाद भरे सम्भाषणों में दोनों पति पत्नी सजीव हो उठे हैं।

पहली ही दृष्टि में किरण का यों रुग्न दिखाई देना हृदय को अवसन्न सा कर देता है—रीढ़ की हड्डी के निरन्तर बहने वाले नासूर से पीड़ित रोगिनी—जो लेटे लेटे कंकाल मात्र रह गई है। हिलने से नासूर का प्लास्टर हट न जाए, इस विचार से डाक्टरों ने उसके पैरों में ईंटे बाँधने का आदेश दे रखा है। रस्सियों से जकड़ी, हिलने जुलने में प्रायः असमर्थ, विवशता की प्रतिमूर्ति किरण वर्षों से चुपचाप पड़ी अगनित अरमानों के जाल बुने जा रही है। कहीं अर्धचेतन में उसे मृत्यु के सामीप्य का आभास मिल गया है और प्रकाश के लिए, जागृति और जीवन के लिए उसकी छटपटाहट और भी बढ़ गई है।

—"उन से कह दो, वे इस कमरे में बैठ कर ब्रिज खेलें, मैं केवल देखूँगी।"

"मैं केवल देखूँगी"—इस छोटे से वाक्य में कितनी विवशता, कितनी आकांक्षा निहित है। दूसरों को जीवित देख कर ही वह जीवन का आभास पा लेना चाहती है। और फिर मृत्यु के समीप पहुँच उसके वे अरमान और स्वप्न.....वह अजीत गढ़ के मीनार पर चढ़ना चाहती है.....मन्दिर के अन्दर जाना चाहती है.....

पहाड़ की चोटी को सर कर लेना चाहती है.....चाँद की किरणों में नहाना चाहती है.....जीवन के लिए किरण की यह छटपटाहट लेखक ने ऐसे लाक्षणिक ढंग पर, ऐसे सुन्दर शब्दों में, रखी है कि इन स्थलों पर पहुँच कर सदैव मेरे जी को कुछ होने लगता है। किरण की इस छटपटाहट में लेखक ने सभी मरने वालों के अरमानों को सँजो दिया है।

फिर वह हरि—उसका वह कवि पति—उसका चरित्र कितना भेद-भरा है। पर्दा उठते ही हम उसे किरण की सेवा में तल्लीन पाते हैं। उसे किरण के कमरे में प्रकाश तक पसन्द नहीं; साथ के कमरे में क़हक़हे तक पसन्द नहीं; शशि से, जो बनारस से केवल उसी के लिए आई है, मिलना तक पसन्द नहीं—एक आदर्श पति सा वह अपनी रोगिनी सहचरी की शुश्रूषा में तन्मय है, परन्तु मनोहर की ईर्षा उसकी इस पत्नी-भक्ति का भेद खोल कर रख देती है। और मनोहर के मुँह से यह सुन कर कि वह अपनी पत्नी की बीमारी से अपनी उन वेदनामयी कविताओं के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है, जिनसे वह शशि को आकर्षित कर रहा है, हमें प्रबल आघात सा लगता है। सुन कर क्षण भर के लिए हम विपन्न से रह जाते हैं। क्या यह सत्य है? क्या ऐसा हो सकता है? किसी ने कहा है—"ईर्षा मनुष्य की आँखों को माइक्रोस्कोप की सी बारीकी प्रदान कर देती है"—मनोहर ने अपनी ईर्षा के सहारे जिस सत्य का पता पाया, वह कदाचित साधारण लोगों की दृष्टि से सदा ओझल रहता। मनोहर (और उसके द्वारा स्वयं नाटककार) अर्धचेतन की गहराइयों में कितना डूब कर इस सत्य का पता पा सका है! हरि कदाचित स्वयं इस सत्य से भिज्ञ नहीं, किन्तु मनोहर की ईर्षा इस सूक्ष्म सत्य को स्थूल बनाकर हमारे समक्ष उपस्थित कर देती है

और मनोहर का अभियोग अकाट्य प्रतीत होता है। और फिर नाटक के अन्त में स्वयं हरि के वे शब्द :—

"वह नहीं आ सकती, वह कभी नहीं आ सकती। देखते नहीं मैंने चिलमन उतार दी है, मैंने चिलमन उतार कर फेंक दी है" ·····और हम जान जाते हैं कि मनोहर का यह अभियोग सत्य था और हरि ने अब पश्चाताप करने की ठान ली है। यह गिरगिट का गुण, यह अस्थिरता कितनी मानवीय है। अपनी एक कहानी "यह मनुष्य" में भी अश्क जी ने इस अस्थिरता का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। और हरि का यह पश्चाताप स्थायी होगा, कौन कह सकता है ?

हरि और किरण के स्पष्ट चरित्रों की पृष्ठ भूमि में एक और अस्पष्ट सा पात्र है जो धीरे धीरे उभरता हुआ नाटक के समाप्त होते होते इन दोनों पात्रों पर छा जाता है। और खूबी यह है कि चरवाहों की तरह यह भी कभी रंग मंच पर नहीं आता। सिद्दीकी साहिब ने अपने लेख में हरि या किरण पर इतना ज़ोर नहीं दिया जितना शशि पर। वे लिखते हैं :—

> शशि स्टेज पर नहीं आती किन्तु उसका रूप स्पष्ट सा होकर सामने आ जाता है। माँ, मनोहर और स्वयं हरि तथा किरण के वाक्य सुन कर हम उसे देखने से लगते हैं। चिलमन का रंग उसके स्वभाव का प्रतीक है और लगता है कि वह भी गहरे नीले टाट सी स्थूल-बुद्धि रखने वाली, अपने मत को मान कर चलने वाली होगी; कि हृदय उसका भावुक है और उसमें रेगिस्तान की बेटियों की सी वह ज्वाला है; कि इस बौद्धिक युग में भी हरि की दर्द भरी भावुक कविताएँ उसके हृदय में प्रेम की चिंगारी भड़का देती हैं और वह बनारस से उड़ी चली आती है।

यहीं से हरि और किरण के केन्द्रीय चरित्र मन्द पड़ने लगते हैं और शशि का टूटते तारे का सा ज्योर्तिमय, किन्तु वेदना पूर्ण चरित्र मूर्त रूप होकर सामने आ जाता है ।।ज्यों ज्यों नाटक बढ़ता है, मेरी दृष्टि हरि और किरण के स्पष्ट चरित्रों पर नहीं जमती, बल्कि पृष्ठ भूमि की धुंधलाहटों में तीखे नक्श और मृग-शावक सी आँखों वाली शशि की अस्पष्ट रेखाएँ कहीं डूबती और कहीं उतराती मुझे अपने में तन्मय कर लेती हैं। ऐसा लगता है कि अश्क की तूलिका ने हरि और किरण के स्पष्ट चरित्रों पर इतना परिश्रम नहीं किया, जितना शशि की धुंधली काया को रूप देने में, क्योंकि उसकी धुंधलाहटों में स्पष्टता और स्पष्टता में धुंधलाहट अतीव आवश्यक थी।

यहाँ मुझे जे० सी० डालमैन के प्रसिद्ध चित्र सेंट ऐंथनी की परीक्षा (Temptation of St. Anthony) का ध्यान हो आता है। इस प्रख्यात चित्र के सम्बन्ध में टालस्टाय का विचार था कि इस चित्र की कला इतनी अश्लील और पोच है कि चित्रकार का ध्यान संत एन्थोनी पर इतना नहीं जितना उसकी पृष्ठ-भूमि में उभरते हुए अर्ध-नग्न नारी के धुंधले से खाके पर !

चित्र की अर्ध-नग्न मूर्तिमान मोहिनी नारी मुझे 'चिलमन' की शशि का प्रतिरूप दिखाई देती है। पहली दृष्टि में संत ऐन्थोनी की पवित्र मूर्ति, उसके सिर का देदीप्यमान मंडल हमारी आँखों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है—'चिलमन' में हरि और किरण के चित्र संत ऐन्थोनी ऐसे ही स्पष्ट और आकर्षक हैं—किन्तु जब हम संत ऐन्थोनी के चित्र से अपनी आँखें हटा कर शेष चित्र की ओर दृष्टि-निपात करते हैं तो पृष्ठ-भूमि के धुंधलकों में अर्ध नग्न

नारी की उभरती हुई रेखाएँ हमें अपने में तन्मय कर लेती हैं। फिर संत ऐन्थोनी पर हमारी दृष्टि नहीं जमती। वास्तव चीज़ वही दिखाई देती है, क्योंकि वही तो मोहिनी है, वही तो संत की परीक्षा लेने वाली है, जिसे ध्यान में रखकर चित्रकार ने चित्र सृजा, नहीं उसके बिना भी चित्र पूर्ण था। और उसका शीर्षक केवल "संत ऐन्थोनी" हो सकता था, पर चित्र का नाम तो "संत ऐन्थोनी की परीक्षा" है और मेरे विचार में यही कारण है कि डालमैन ने उस धुंधले से खाके पर इतना परिश्रम किया। यही हाल "चिलमन" में शशि का है और शशि ही के कारण खेल का नाम "चिलमन" है, नहीं यदि शशि के चित्र और चिलमन के प्रतीक को अधिक धुंधला कर दिया जाए तो डालमैन के चित्र की भाँति इस खेल का नाम भी "हरि की व्यथा" अथवा "जीवन की आकांक्षा" अथवा "किरण" हो सकता था!

लेकिन शशि ही तो वह गहरा नीला टाट है, जो किरण के जीवन और और उसकी ज्योति के मध्य लटक रहा है। उसी के कारण मरते मरते किरण की ईर्षा और ईर्षा से उत्पन्न होने वाली जीवित रहने की तड़फड़ाहट करुण हो उठती है। चिलमन का यह प्रतीक अंत में हरि के एक वाक्य से बिलकुल प्रकट हो जाता है।

"वह नहीं आ सकती, वह कभी नहीं आ सकती। देखते नहीं मैंने चिलमन उतार दी है। मैंने चिलमन उतार कर फेंक दी है!"

'चमत्कार' में संकेतों की बाढ़ तेहरी हो गई है। संकेत कुछ अस्पष्ट हैं पर तनिक ध्यान देने पर साफ़ समझ में आ जाते हैं। मृत-मीन भ्रष्ट

जीवन का, गढ़वाली गोलियाँ (जो एक पहुँचे हुए संत ने प्रदान की हैं) साधारण लोगों के विश्वास का और श्वेत डाढ़ी वाला, सर्व-वेत्ता लेखक का प्रतीक है। अश्क जी के डाढ़ी नहीं, किन्तु जब भी मैं यह नाटक पढ़ती हूँ, मुझे यही लगता है कि नाटक के अंत में लम्बी सी श्वेत डाढ़ी बढ़ाए उन्हीं का वृद्ध स्वरूप व्यग्यं से मुस्करा कर कहता है।

"विश्वास उत्पन्न करने की आवश्यकता है, चमत्कार क्या आज नहीं हो सकते।"

कला और विषय-वस्तु की दृष्टि से "चमत्कार" अतीव सफल नाटक है। श्रीमती मुमताज़ शीरीं ने "नया दौर" (बंगलौर) में इसे 'अश्क का चमत्कार' कहा है। प्रकट प्रहसन की वेशभूषा धारण किए हुए वास्तव में यह नाटक कितनी गम्भीरता से हमारे धार्मिक विश्वासों पर व्यंग्य का नश्तर लगाता है, इसे नाटक को ध्यान से पढ़ने पर ही जाना जा सकता है।

पहली बात जो नाटक पढ़ने पर प्रकट होती है, वह धर्म में साधारण लोगों की दिलचस्पी की यथार्थता है। लोगों की दिलचस्पी धर्म में कितनी ऊपरी है—धर्म के गहन विषय पर तर्क-वितर्क को वे जिस ध्यान से सुन रहे हैं और जिस प्रकार बढ़ बढ़ कर उसमें योग दे रहे हैं, उसी ध्यान से वे बंटी वाले की लच्छेदार बातें सुनने लगते हैं। बिलकुल उसी प्रकार जैसे गाड़ी के डिब्बे में, ट्राम में, वाटिका में अथवा किसी ऐसे ही जन-संकुल स्थान में कई बुज़ुर्ग बड़े ज़ोरों से माला फेरते फेरते पास हो होने वाली राजनीतिक या सामाजिक बात चीत में योग देने लगते हैं।

और फिर दूसरे यह कि जब लोग धार्मिक समस्या पर वाद-विवाद करते करते गढ़वाली गोलियों के चमत्कार से प्रभावित हो जाते हैं, तो वास्तव में चमत्कार वह पवित्र गाथा नहीं रह जाती कि यीसू मसीह ने

एक तरुणी को छुआ तो वह उठ खड़ी हुई, वरन् यह कि किस प्रकार एक बाज़ारी वैद्य (Quack) देखते देखते लोगों की गाढ़े पसीने की कमाई छीन कर ले जाता है।

फिर यदि हम मान लें (और नाटक में यह मान लेने के लिए संकेत है) कि घंटी वाले और तुर्की टोपी वाले ने पहले से गिन-मिथ कर वह षड्यन्त्र रचा था, तो देखते देखते लोगों के इस प्रकार उल्लू बनने पर और भी हँसी आती है और क्षण भर के लिए विचार हो आता है कि घंटी वाले ही की भाँति कितने Quack हमारी जनता के इस विश्वास का लाभ उठा कर उसे ठग न रहे होंगे !

इसके अतिरिक्त यह नाटक चौथा और सब से महत्व पूर्ण जो प्रश्न, हमारे सम्मुख अपने तीव्र व्यग्यं से उपस्थित करता है, वह यह है कि वे चमत्कार जो जनता ने अपने महापुरुषों के प्रति स्थिर कर रखे हैं, क्या वास्तव में जनता के विश्वास ही का फल तो नहीं !

"चमत्कार" के गुणों को मैं कदाचित ठीक ठीक प्रकट नहीं कर सकी। मेरी दशा गूँगे के गुड़ की सी है। "चमत्कार" को पढ़ कर, इसके प्रकट और प्रोक्ष संकेतों को समझ कर, जो रस मिलता है, उसे वाणी में व्यक्त करना कम से कम मेरे लिए कठिन है। मैंने नाटक की गहराई तक पहुँचने के लिए सीधे साधे ढंग पर रास्ता सुझा दिया है।

"मैमूना" बड़ी दर्द भरी झांकी है। यही बात, कि सारे का सारा खेल क़द्रों (Values) और अन्दाज़ों (Calculations) की ग़लती पर निर्भर है, विषय को बड़ा दुखद बना देती है। फिर इस खेल में एक भोली भाली निरीह बालिका की भटकी हुई, विवश, निराश्रित आत्मा की कल्पना इसमें और भी व्यथा भर देती है।

मैमूना (बच्ची) आमना (माँ) के पहले पति स्व० साजिद की जीती जागती निशानी है। क्योंकि साजिद से, उनके जीवन काल ही में आमना घृणा करने लगी थी, इस लिए मैमूना की शक्ल ही से उसे चिढ़ हो गई है। मैमूना एक सीधी साधी बालिका है जिसमें माँ के इस दुर्व्यवहार ने अभी तक किसी प्रकार की जटिलता (Complex) उत्पन्न नहीं की (वह उस वयस में है जहाँ से मन में जटिलताएँ उत्पन्न होने लगती हैं) आमना का वर्तमान पति अरशद एक प्रकार से मैमूना ही का प्रौढ़-प्रतीक (Adult Symbol) है, क्योंकि आमना, जो साजिद के समय में अरशद से प्रेम करती थी, अब उसकी निर्धनता और बेपरवाही से ऊब कर अपने देवर माजिद से प्यार करने लगी है। साजिद के समय में आमना साजिद की बेटी मैमूना को प्यार से "अरशद चचा की बेटी" कहा करती थी और अब अरशद के बेटे फ़रीद को "माजिद चचा का बेटा" कहती है।

सिद्दीकी साहिब ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित व्याख्या की है:—

"आमना अरशद से विवाह करना चाहती थी, पर साजिद की सम्पन्नता के कारण उसने उनसे विवाह किया, किन्तु वह अरशद की चाह न छोड़ सकी और जब वह एक बच्ची की माँ हुई तो उसकी अपराधी आत्मा को साजिद से किसी प्रकार का मानसिक अथवा शारीरिक नाता असह्य हो गया। अपने प्रेमी अरशद से बेवफाई को, अपनी अपराधी आत्मा की तुष्टि के लिए, उसने कुछ इस प्रकार की युक्ति से उचित समझ लिया :—

—साजिद कुरूप और मूर्ख हैं, पर मैं भी क्या करती, अरशद तो विपन्न थे और साजिद सम्पन्न। उन्हें स्वीकार करना ही पड़ा।

—पर यह क्या जानती थी कि साजिद की सहचरी होकर मैं उनकी एक बेटी की माँ भी कहलाऊँगी !

—तौबा यह लड़की.....साजिद की बेटी है.....तौबा !

—बच्ची अच्छी है, और मेरी भी तो है, लेकिन साजिद..... साजिद इसके पिता हैं.....यह कल्पना ही असह्य है.....!

—अरशद अब भी मेरी कल्पना के देवता हैं।

—ओह !..... लेकिन मैमूना.....काश साजिद की यह बेटी, अरशद की बेटी कहलाती !

—अच्छा तो क्या हुआ ? मम्मो अरशद की बेटी होगी—मैं उसमें उन्हीं का प्रतिबिम्ब देखूँगी।

—क्यों मम्मो, तू अरशद की बेटी है न ? अपने अरशद चचा की बेटी !

उस के भाग्य से साजिद मर जाते हैं और वह तत्काल उस भूल का सुधार कर लेती है और यद्यपि उसका देवर माजिद उससे प्यार करता है, पर उसे छोड़ कर वह अपने पहले प्रेमी अरशद से विवाह कर लेती है। किन्तु धन-वैभव और उससे सम्बन्ध रखने वाले शिष्टाचार उसकी नस नस में रच चुके हैं। अरशद की असभ्य विपन्नता उसकी आँखों में खटकने लगती है—यहाँ तक कि उसे फिर वही सम्पन्नता और उसका सौन्दर्य याद आने लगता है। अरशद उसे गन्दा गरीब और असभ्य लगता है। धीरे धीरे वह उससे घृणा करने लगती है, अपनी प्रेम-नदी की धारा माजिद की ओर मोड़ देती है और अरशद का प्रतिरूप मैमूना उसकी आँखों से उतर जाती है। वह कुछ उसी तरह की युक्ति

में अरशद के बेटे फ़रीद को माजिद चचा का बेटा कहने लगती है और अरशद मैमूना ही की भाँति उपेक्षित, निराश्रित और आमना के प्रेम-संसार से निर्वासित रह जाता है।"

आमना के मनोविज्ञान की यह व्याख्या सिद्दीकी साहिब ने बहुत सुन्दर की है। पर वे यह मान कर चले हैं कि मैमूना साजिद की बेटी और फ़रीद अरशद का बेटा है, किन्तु ऐसा भी तो हो सकता है कि मैमूना सचमुच अरशद की बेटी और फ़रीद माजिद का बेटा हो। और इस बात को मानने के लिए, कि आमना अपने दोनों पतियों से बेवफ़ाई करती रही है, खेल में काफ़ी संकेत है।

साजिद से विवाह करके भी आमना अरशद की मुहब्बत का दम भरती है.....अरशद उसके घर आता रहता है.....साजिद उसके आने पर अपत्ति नहीं करते...जब साजिद घर होते हैं, आमना या सोती है या सैर को चली जाती है और जब वे घर नहीं होते (यद्यपि खेल में इसका ज़िक्र नहीं किया गया) तो वह अरशद के साथ रहती है.....। और खेल के अन्त में अरशद की दुखी आत्मा पुकार कर मम्मो से कह उठती है।

—"तू मेरी बेटी है, खैरिन की नहीं, साजिद की नहीं, आमना की भी नहीं, तू अपने अब्बी की बेटी है!"

यही कुछ हम माजिद से आमना के सम्बन्ध और फ़रीद के माजिद का बेटा होने के बारे में कह सकते हैं। आमना अरशद से भी उसी प्रकार विश्वासघात करती है। इसके संकेत नाटक में वर्तमान हैं। इस दृष्टि से देखने पर नाटक और भी दुखद हो जाता है। साजिद और अरशद हमें एक से दुखी प्रतीत होते हैं और साजिद और उनके बाद अरशद की महानता, उदार हृदयता, धीमे धीमे

अपने प्रेम की आग में जलना अनायास ही हमारा मन मोह लेता है। और न केवल अरशद, वरन् साजिद भी मैमूना के प्रौढ़ प्रतिरूप बन जाते हैं—यहाँ यह बात देखने योग्य है कि आमना से निराश होकर दोनो अपने प्रेम को मैमूना पर केन्द्रित कर देते हैं, जो उन्हीं की भाँति प्रेम की भूखी है।

रही आमना तो वह सारे पात्रों पर छाई हुई है। उसका चरित्र बड़ा सबल और शक्ति-सम्पन्न है। उसका दोष सिद्दीकी साहिब की दृष्टि में यह है कि वह अपनी गणनाओं (calculations) में ग़लती और फिर ग़लती करती है और इसी लिए उन्हें उससे सहानुभूति होने लगती है, किन्तु मुझे उसके प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं। वह साजिद को न चाहती थी तो उसने उन्हें छोड़ा क्यों नहीं? वह अरशद को न चाहती थी तो उसने उसे स्पष्ट रूप में यह बताया क्यों नहीं? उससे सम्बन्ध विच्छेद क्यों नहीं किया? वह दोहरा जीवन (Double life) क्यों व्यतीत करती रही? और यदि सचमुच साजिद और अरशद से, उनसे विवाह करने पर भी (मेरी दूसरी व्याख्या के अनुसार) वह शारीरिक विश्वासघात करती रही है, तो वह मेरी सहानुभूति की पात्र नहीं, क्योंकि मैं उसकी अस्थिरता को असयंम और स्वमताभिमान का नाम देती हूँ। स्वयं अश्क जी का क्या मत है, मैं पूरे तौर पर नहीं कह सकती। मैंने उनसे पूछा तो उन्होंने कहा—मेरी दृष्टि आमना पर न थी, मेरे सामने मैमूना और उसके बाद अरशद और साजिद ही रहे"—लेकिन उनके इस कथन के बावजूद आमना सब से अधिक महत्त्व प्राप्त कर लेती है। साजिद, अरशद और मैमूना के साथ साथ उसकी अपनी ट्रेजेडी भी तो कम नहीं—एक मानिनी नारी जो अपने अस्थिर चित्त के कारण भूल पर भूल करती

चली जाती है और कहीं शान्ति नहीं पाती—और कदाचित् इसी लिए खेल में कुछ ऐसी बात भी आ गई हो जिससे उसके प्रति किसी किसी के मन में सहानुभूति का आविर्भाव हो जाता हो।

"चुम्बक", "सूखी डाली" और "खिड़की" में किसी प्रकार की उलझन नहीं। "चुम्बक" में लोह-चून के दो कणों, "सूखी डाली" में वट और सूखी डाली और "खिड़की" में प्रतीक्षा करने वाले प्रेमी और खुली खिड़की के संकेत और प्रतीक सुस्पष्ट हैं।

सिद्दीकी साहिब ने "चुम्बक" को यह कह कर छोड़ दिया है कि उन्हें संग्रह के नाटकों में यह सब से अधिक पसन्द है! उन्हें गौतम की उस प्रतिमा से ईर्षा है जिसके व्यक्तित्व का चुम्बक लोह-चून के दो कणों को अपनी ओर खींचने में समर्थ होता है। स्वयं अश्क जी को सरिता का चरित्र पसन्द है क्योंकि उसी की रूमानी कल्पना (Romantic Imagination) का झूठ प्रमाणित करने के लिए उन्होंने यह नाटक सृजा। और उन्होंने उसे सचमुच की सरिता बनाने में—जो पाषाणों और चट्टानों को फलांगती हुई, सागर से मिलने को बढ़ी चली जाती है—कोई कसर नहीं उठा रखी। किन्तु मुझे गोपा पसन्द है। सिद्दीकी साहिब के विचार में यह ट्रेजेडी गौतम की है, अश्क जी इसे सरिता की ट्रेजेडी समझते हैं, किन्तु मेरे विचार में यह ट्रेजेडी गोपा की और केवल गोपा की है। गौतम कदाचित गोपा से निराश होकर लोह-चून के किसी और कण को अपनी ओर खींच लेगा, कदाजित सरिता ही के अनुभवहीन यौवन को अपनी बातों में फँसाए रखेगा, कदाचित सरिता भी अपने हठ से गौतम को जीत लेगी पर गोपा जिसका प्रेम सरिता की तरह तूफानी नहीं सागर की भाँति गम्भीर है, जो भावुक नहीं, बुद्धिवादी है, जो "आदि मार्ग" की 'रानो' की भाँति अपना

अपमान करने वाले को, उससे प्रेम करने पर भी, छोड़ सकती है।—उसकी निराशा शब्दों में अंकित नहीं की जा सकती। मुझे 'जवाब' फिल्म में जमुना का चरित्र याद आ जाता है 'जवाब' चाहे चुम्बक के बहुत दिनों बाद बनी, पर जब मैंने 'जवाब' में जमुना को देखा तो मुझे ऐसा लगा जैसे चुम्बक ही की गोपा मूर्तिमान होकर मेरे सामने आ गई है। अपने प्रेमी को, प्रेम करने के बावजूद, छोड़ देने की जो विवशता 'जवाब' में जमुना की है, वही चुम्बक में गोपा की है। यद्यपि नाटककार ने यह नहीं लिखा कि वह गौतम को छोड़ देती है पर उसकी व्यग्यंमयी मुस्कान से पता चल जाता है कि अब यदि गौतम उसके चरणों में गिर कर गिड़गिड़ाएगा तो भी वह उसे स्वीकार न करेगी।

"सूखी डाली" यद्यपि दुखांत नहीं, सुखांत एकांकी है, पर अन्त में जहाँ बेला इन्दु के साथ बातें करती है और स्वयं कपड़े धोने को चल देती है और दादा से कहती है—"दादा जी, आप किसी डाली का पेड़ से टूट कर अलग होना पसन्द नहीं करते, पर क्या आप यह पसन्द करेंगे कि पेड़ से लगी लगी वह डाली सूख कर मुरझा जाए!" वहाँ कंठ अनायास भर आता है। वास्तव में यहीं अश्क जी ने व्यग्यं का नश्तर पूरे ज़ोर से हमारी कौटुम्बिक प्रणाली पर लगाया है।

यहाँ तक तो थी नाटकों की सांकेतिक व्याख्या, किन्तु इन संकेतों और प्रतीकों के अतिरिक्त यदि नाटकों की आधार-भूत भावनाओं और धारणाओं का विश्लेषण किया जाए तो पाठकों को इनकी विभिन्नता में एकरसता और एकरसता में विभिन्नता मिलेगी। कदाचित यही कारण हैं कि अश्क जी ने इन नाटकों को एक संग्रह में संकलित किया है। "चरवाहे", "चिलमन" और "चुम्बक" में एक एक पात्र कवि है

किन्तु इन तीनों कवियों की प्रकृति एक दूसरे से भिन्न है— 'चरवाहे', का कवि कान्त कल्पना लोक का वासी है। यह ठीक है कि जीवन के अनुभवों ने उसकी आँखें खोल दी हैं और वह संसार की यथार्थता से पूर्णतया अभिज्ञ हो गया है, किन्तु वह केवल कल्पनाओं के ढोर डंगर चराता है। उसमें क्रियाशीलता का अभाव है। वह परतन्त्र और अकर्मण्य है और क्योंकि नाटक की आधार-भूत भावना स्वच्छन्दता और क्रियाशीलता है, इसलिए कान्त का चरित्र हमें अत्यधिक निर्जीव कवि का सा लगता है, जो युवावस्था ही में प्रौढ़ हो गया है; जो शायद रत्नी से प्रेम करता है, किन्तु उसमें गोविन्द अथवा राजा का सा साहस नहीं; जो जीते जी राख हो गया है—ऐसी राख

न जो गरमाय
न गर्मी पाय
पड़े अगर अंगारा उसमें
तो बुझ जाय !

किन्तु "चिलमन" और "चुम्बक" का कवि ऐसा चतुर कवि है जो मकड़ी की भाँति अपने जाल बुने जाता है और उसके जालों में फँसने वाली रंगीन तितलियाँ अपनी झलकियों से नाटक का निर्माण करती हैं। ये तीनों कवि पात्र एक दूसरे से भिन्न दिखाई देते हैं पर यदि ध्यान से देखा जाए तो ये एक ही स्वभाव के तीन पलटे दिखाई देते हैं। यहाँ पहुँच कर यह प्रश्न उठता है कि अश्क जी की अपनी प्रकृति नाटकों के उन कवि पात्रों की आधार-भूत प्रकृति से कहाँ तक मेल खाती है ? लगता है जैसे तीन भिन्न रंगों में उन्होंने अपने व्यक्तित्व का कुछ न कुछ अंश छोड़ा है। नहीं तो एक दो, छोड़ तीन तीन नाटकों में कवि पात्र रखने अथवा ऐसा कथानक सृजन करने की

क्या आवश्यकता थी, जिसमें नाटक का ताना बाना कवि के फैलाए हुए सुनहरी जाल की छाया हो। मैं इस विषय पर बहुत कुछ लिख सकती हूँ पर इस प्रश्न का उत्तर एक दूसरे लेख और अश्क जी की दूसरी कृतियों के गहरे अध्ययन की अपेक्षा रखता है और इस लेख के विषय के बाहर की वस्तु है।

यह एकरसता में विभिन्नता और विभिन्नता में एकरसता पुरुष पात्रों तक ही सीमित नहीं, नारी पात्रों में भी इसका दिग्दर्शन होता है—रत्नी, शशि और सरिता एक ही रागिनी की तानें दिखाई देती हैं। मुझे अश्क जी की वही कविता याद आ जाती है जिसकी कुछ पंक्तियाँ मैंने ऊपर उद्धरित की हैं। कवि एक तरुणी से मिलता है, वह उसकी चाल में तरुण नदी का प्रवाह और चिंगारी का सा जगता जीवन देखता है। अन्तिम चरण में वह कहता है :—

हम मिले
मुझे मालूम हुआ
तुम चिड़िया हो
चल पंख तुम्हारे आतुर
उड़ने को आकाशों की गहराई में
कल कंठ तुम्हारा बेकल
गाने को जीवन के मादक गाने
अनजाने
मंडल में जाने को
हृदय तुम्हारा विह्वल !

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि रत्नी इसी कविता की वह यौवन माती

चिड़िया है जिसमें जीवन और यौवन इस हद तक तड़प रहा है कि वह अनजाने, अनदेखे मंडलों में उड़ जाने को आतुर है।

"चुम्बक" की सरिता—इसी कविता की तरुण तूफ़ानी नदी है जो गौतम के दुख भरे गीतों से, अपनी ही रूमानी कल्पना (Romantic Imagination) से उसका पीड़ातुर चित्र बनाती हुई, पाषाणों और चट्टानों की बाधाओं को बहाती-मिन्टगुमरी से चली आती है। "चिलमन' की शशि सरिता ही का दूसरा रूप है। किन्तु इस एक रसता के बावजूद रत्ती सरिता और शशि भिन्न हैं।

जिन पाठकों ने अश्क जी का नाटक "पापी" पढ़ा है, उन्हें "पापी" और "चिलमन" के कथानक में एक हल्की सी समानता अवश्य दिखाई देगी।

—* "पापी" की छाया यक्ष्मा से पीड़ित है।

"चिलमन" की किरण भी यक्ष्मा के दूसरे (और भी प्रबल) रूप में ग्रसित है।

—* "पापी" का शान्तिलाल अपनी पत्नी से विश्वासघात करता है।

"चिलमन" का हरि भी अपनी पत्नी से विश्वासघात करता है।

—*"पापी" में छाया अन्त में मर जाती है और इस मरने में शान्तिलाल के विश्वासघात का भी हाथ है।

"चिलमन" में किरण मर जाती है (और यद्यपि प्रकट दिखाई नहीं देता) पर पूरे ध्यान से नाटक को पढ़ने पर पता चल जाता है कि हरि का शशि को खींच बुलाना ही उसकी मृत्यु का तात्कालिक (Immidiate) कारण है।

किन्तु "पापी" से "चिलमन" तक अश्क जी की कला कितनी सुन्दर हो गई है, इसे दोनों नाटकों को एक साथ पढ़ने पर ही जाना जा सकता है।

उर्दू में अश्क जी के प्रकाशक ने "चरवाहे" के चन्द नाटकों के बारे में लिखा था कि ये योरूप की किसी भी भाषा के सुन्दर तम नाटकों के साथ रखे जा सकते हैं। हीन-भाव से पीड़ित कतिपय आलोचकों को यह बुरा लगा। "अदबी दुनिया" और "नया अदब" जैसी चोटी की पत्रिकाओं में भी जो आलोचनाएँ निकलीं, उनमें जहाँ नाटकों की प्रशंसा की गई, वहाँ यह कहा गया कि भारत में 'बर्नाडशा' और 'इबसन' के पैदा होने में देर है। क्योंकि हिन्दी में भी ऐसे छिद्रान्वेशी आलोचकों की कमी नहीं जो प्रसिद्ध रूसी गल्पकार चैखोव के कथनानुसार—"गऊ मक्खी की भाँति काट कर ही अपनी सत्ता सिद्ध करते हैं—" इसलिए हो सकता है हिन्दी का कोई आलोचक भी ऐसी ही बात कहे। ऐसे महानुभावों की सेवा में मैं इतना निवेदन करना चाहती हूँ कि इन नाटकों को पढ़ते समय वे 'शा' और 'इबसन' को ध्यान में न रखें, क्योंकि उन दोनों ने कभी एकांकी नहीं लिखे। अश्क जी ने चाहे बड़े नाटक भी लिखे हैं पर इस संग्रह में वे एकांकी नाटककार के रूप में आते हैं और 'शा' अथवा 'इबसन' से उन की तुलना करना अन्याय है। हाँ यदि योरूप के एकांकी नाटकों के साथ इन को रखा जाएगा तो इस संग्रह ही के नहीं, वरन अश्क जी के दूसरे संग्रहों से भी कई नाटक योरूप की किसी भी भाषा के सुन्दर एकांकियों के साथ रखे जा सकेंगे।

आलोचकों की बात चली तो अश्क जी के हिन्दी नाटकों "छटा बेटा", "स्वर्ग की झलक" और "देवताओं की छाया में" की हिन्दी

लोचनाओं की याद आ गई। ये पंक्तियाँ लिखते समय मैंने उन लोचनाओं को फिर ध्यान से पढ़ा है और मैं देखती हूँ कि अच्छे च्छे ख्याति प्राप्त आलोचकों ने भी कुछ निरर्थक आपत्तियाँ की हैं।

एक आपत्ति जो आलोचक नाटकों पर करते हैं, यह है कि वे ामता से रंगमंच पर खेले नहीं जा सकते। अपनी इस अमूल्य सूझ प्रमाण में वे उस भूमिका का उल्लेख करते हैं जो अश्क जी के तेपय नाटकों से पहले कहानी के से रूप में विद्यमान है। (पुराने टकों में "छटा बेटा" और "स्वर्ग की झलक" तथा वर्तमान संग्रह "चुम्बक" और "सूखी डाली" के पहले ऐसी भूमिका है) और न उठाते हैं कि यह सब किस प्रकार स्टेज पर उपस्थित किया जा ता है।

दूसरी आपत्ति जो मुझे इन आलोचनाओं में मिली वह रंगमच के ाधन अथवा उसकी बनावट के सम्बन्ध में है।

एक आलोचक ने कुछ प्रवेशों और प्रस्थानों पर आपत्ति की है कि अकारण अथवा अनावश्यक हैं।

ऐसे छिद्रान्वेशी आलोचकों की दृष्टि कदाचित नाटक की नाटकीयता, वों के चरित्र चित्रण, कथा-वस्तु के सौन्दर्य, सम्भाषणों के प्रवाह, व्यग्य तीव्रता या यथार्थ अथवा आदर्श के चित्रण को न देख कर, अपनी ालोचना-शक्ति की तीव्रता के प्रमाण में ऐसे छिद्र ढूँढ़ा करती है।

ऐसे महानुभावों की सेवा में मैं यहाँ एक दो बातें लिख देना हती हूँ।

पहली तो यह कि यद्यपि नाटक रंगमंच की वस्तु है और अश्क जी ायः रंगमंच के लिए लिखते हैं, और रंगमंच का व्यक्तिगत अनुभव उन्हें

हमारे अधिकांश आलोचकों से कहीं अधिक है, किन्तु भारत में रंगमंच का अभाव होने के कारण, वे भावी दर्शकों की अपेक्षा अपने वर्तमान पाठकों का अधिक ध्यान रखते हैं, और रंगमंच के निर्देशन को लक्ष्य में रख कर दिए जाने वाले आदेश शुष्क और नीरस न हो जाएँ, इस विचार से उन्हें मनोरंजक बना देते हैं। यही कारण है कि प्रायः अश्क जी के एकांकी कहानियों जैसे मनोरंजक बन जाते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी भूमिकाओं अथवा निर्देशों में कभी कभी जो उपमाएँ अथवा अलंकार मिलते हैं, वे स्टेज पर दिखाने के लिए नहीं, वरन पाठकों के मनोरंजनार्थ होते हैं। प्रसिद्ध अंग्रेज़ी नाटककार जे० एम० बैरी के नाटक जिन पाठकों ने पढ़े हैं—और जे० एम० बैरी स्टेज़ क्राफ़्ट (Stage craft) में निपुण माने जाते हैं—उन्होंने देखा होगा कि बैरी जब भी अपने नाटकों को पुस्तकाकार म प्रस्तुत करते हैं, सदा इन आदेशों में नमक मिर्च लगा देते हैं। योरूप के कतिपय अन्य नाटककार भी इस प्रणाली का अनुसरण करते हैं।

पाठकों की दिलचस्पी के अतिरिक्त इससे एक लाभ यह भी होता है कि निर्देशक को पात्रों और कथा-वस्तु का पूरा पूरा पता चल जाता है और वह समझ जाता है कि नाटककार उस से किस प्रभाव और किस चरित्र-चित्रण की आशा रखता है। हाल ही में अश्क जी का एक नया एकांकी "तूफ़ान से पहले" इप्टा (I. P. T. A) बम्बई की ओर से खेला गया। नाटक के पहले तीन साढ़े तीन पृष्ठ की भूमिका है। प्रकट है कि निर्देशक ने उसे पढ़ कर नाटक और उसके स्थान और पात्रों के चरित्र को समझ लिया और उस पर लाल पेंसल फेर कर नाटक का निर्देशन आरम्भ कर दिया।

दूसरी बात जो विद्वान् आलोचकों को स्मरण रखनी चाहिए, वह यह है कि जब कोई नाटक (जो खेलने के पश्चात् पुस्तक रूप में न आया हो, वरन् पुस्तक रूप में आने के पश्चात् खेला जाए) रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है, तो उस में कुछ परिवर्तन अनिवार्य हो जाते हैं। कई 'प्रवेश' अथवा 'प्रस्थान' बदलने पड़ते हैं और कई बार एक दो नये बनाने पड़ते हैं। कई बार सम्भाषण तक लम्बे अथवा छोटे करने पड़ते हैं। यही बात दूसरे निर्देशों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

तीसरी बात यह है कि पाठकों के लिए जो नाटक प्रस्तुत किए जाते हैं, उनमें ऐक्शन के निर्देश कम रहते हैं। यह ऐक्शन जहाँ रंगमंच पर सम्भाषणों के प्रभाव को द्विगुन करता है, वहाँ लेखनी में सम्भाषणों के प्रवाह को रोकता है। निपुण निर्देशक से यह आशा की जाती है कि वह निर्देशन के संकेत सम्भाषणों के मध्य स्वयं दे लेगा। किसी लम्बे सम्भाषण के मध्य कोई पात्र क्या करता है, कहाँ बैठता उठता अथवा घूमता है, इस का निर्देशन वह स्वयं देगा। अश्क जी कई बार इस ऐक्शन का संकेत भर कर देते हैं और कई बार यह काम रंगमंच के निर्देशक के सामर्थ्य (Resourcefulness) पर छोड़ देते हैं। "तूफ़ान से पहले" जब स्टेज के लिए प्रस्तुत किया गया तो अश्क जी ने स्वयं उस में ऐक्शन के अनुसार कई परिवर्तन किए, किन्तु जब नाटक छपा तो एक दो महत्वपूर्ण सम्भाषणों के अतिरिक्त उन्होंने नाटक में कोई परिवर्तन नहीं किया। पूछने पर उन्होंने कहा कि इस सब ऐक्शन का उल्लेख पाठकों का ध्यान बटा देता है, वे इन्हें पढ़ते हुए उकता जाते हैं।

अन्त में प्रस्तुत संग्रह के एकांकियों की नाटकीयता के सम्बन्ध में

(जहाँ तक इनका सम्बन्ध स्टेज से है) कुछ शब्द कहना चाहती हूँ। एक प्रसिद्ध उर्दू आलोचक का मत है कि जहाँ अश्क जी के पहले नाटक रंगमंच के उपयुक्त हैं, वहाँ ये नाटक कदाचित रंगमंच की अपेक्षा रेडियो पर अधिक सफलता से खेले जा सकते हैं।

इस में कोई संदेह नहीं कि इस संग्रह के कतिपय नाटक बड़ी सफलता से रेडियो स्टेशनों से ब्राड कास्ट हुए हैं और हो रहे हैं, किन्तु यही बात अश्क जी के पहले नाटकों के सम्बन्ध में कही जा सकती है जो उन्होंने रेडियो के आगमन से कुछ समय पहले ही लिखे थे। "पापी" और "लक्ष्मी का स्वागत" स्टेज पर जिनकी सफलता के सम्बन्ध में दो मत नहीं, पिछले आठ दस वर्षों में आल इंडिया रेडियो के विभिन्न स्टेशनों से लगभग चालीस पचास बार ब्राडकास्ट हो चुके हैं। अश्क जी नाटक प्रायः स्टेज के लिए लिखते रहे हैं। हाँ, जब जब आवश्यकता पड़ी तो उनके रेडियो वर्शन (Radio Version) भी तैयार करते रहे हैं। उन महानुभाव ने जो पहले नाटकों की अपेक्षा इन पर यह आपत्ति की तो कदाचित इसलिए कि इन नाटकों में कई स्थलों पर द्वन्द्व (Conflict) स्थूल न होकर सूक्ष्म हो गया है; संकेत संकेत में मानव-मन की गहन गुफाओं में छिपी हुई भावनाओं को उद्भासित किया गया है; एकांकी के नये नये प्रयोग इस संग्रह के नाटकों में किए गए हैं और कहीं कहीं सम्भाषण—जैसा कि 'चिलमन' में—सरगोशी की सीमा को पहुँच गए हैं।

जिन पाठकों ने इप्टा (I. P. T. A.) की सांस्कृतिक टोली (Cultural squad) के रहस्य (Ballet) देखे हैं वे भलीभाँति जानते हैं कि 'चरवाहे' और 'चिलमन' जैसे नाटक किस प्रकार स्टेज किए जा सकते हैं और किस प्रकार रुग्ना किरण का सरगोशी का स

मद्धम स्वर हाल की पिछली बेंचों पर बैठे हुए दर्शकों तक पहुँचाया जा सकता है। औषधियों की तिपाई के नीचे रखा हुआ छोटा सा माइक्रोफ़ोन यह काम भलीभाँति परिपूर्ण कर सकता है। यही बात दूसरे कमरे अथवा रंगमंच के बाहर से आने वाली आवाजों के सम्बन्ध में कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त प्रकाश अथवा छाया (Light or shade) और बैकग्राउंड संगीत किस प्रकार सम्भाषणों को उभारने का काम देते हैं, इसे वे ही लोग जान सकते हैं जिन्हें आधुनिक रंगमंच का अनुभव है। इसके लिए हमारे उन 'विद्वान' आलोचकों की 'अपूर्व सूझ' के बदले श्री० बलराज साहनी के से सफल निर्देशन की आवश्यकता है।

"चरवाहे" के नाटक त्रुटियों से सर्वथा मुक्त हैं, मैं ऐसा नहीं कहती। मैंने इन नाटकों के गुणों का विवेचन (Appreciation) मात्र पाठकों के समक्ष रखा है। त्रुटियों और दोषों का विवेचन करने वाले आलोचकों की कमी नहीं। अश्क जी मेरे इतने समीप हैं कि भरसक प्रयत्न करने पर भी मैं तटस्थ नहीं रह सकी। मैं यह स्वीकार कर लेती हूँ। क्योंकि पूर्ण तटस्थता तो केवल पाषाण को प्राप्त है और मैं इन्सान हूँ। ये नाटक मुझे अश्क जी के पहले नाटकों से अधिक पसन्द हैं और इन पंक्तियों द्वारा मैंने अपनी पसन्द के कारण, पाठकों के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया है। पाठक मेरी हर बात से सहमत होंगे और संग्रह के प्रत्येक नाटक को पसन्द करेंगे, इस बात की न मुझे आशा है न वांछा, किन्तु ये पंक्तियाँ इनमें से किसी नाटक के रसास्वादन में भी यदि पाठकों की सहायता करेंगी तो मैं अपने प्रयत्न को सफल समझूंगी!

पंचगनी — कौशल्या

३-१०-१९४७

चरवाहे

पात्र

रत्नो	राय धनी राम (रत्नो के मामा)
किश्नी	
जसोदा	कान्त
मामा	राजा
बुआ	गोविन्द (चरवाहा जो रंगमंच पर नहीं आता)
	बृन्दावन
	बिल्लू
	कुन्नू आदि

स्थान—

दक्षिण पंजाब का एक गाँव

समय—

दिन का तीसरा पहर

[पर्दा उठने से पहले बैकग्राउंड में दूर से चरवाहों के गाने की ध्वनि गूँजती हुई-सी आती है।]

हे जी, हाँ...आँ..., हाँ...आँ..., हाँ...आँ..., हाँ
म्हारा जंगल का सब साज सदा रहती है दूब हरी
अरर, रर, रा
अरर, रर, रा
अरर, रर, रा
रहती है दूब हरी
सदा रहती है दूब हरी

[पर्दा धीरे-धीरे उठता है। रत्नी अपने कमरे की खिड़की में चुपचाप खड़ी गाना सुन रही है। कमरा साफ़ और सलीक़े से सजा है। शहरी की अपेक्षा यह देहाती अधिक दिखाई देता है। तिपाई और कुर्सियों के अतिरिक्त एक छोटा-सा तख्त भी इसमें बिछा है। गाने की ध्वनि धीरे-धीरे दूर होती जाती है।]

किसे के रे, धन का भरे से खजाना
कोई रे, करता काम बेगाना

म्हारा मन अपने का राज, रहे आशा की बेल भरी !

रत्नी—(कमरे में आकुलता से घूमते हुए अपने आप) चरवाहे गा रहे हैं—अपना अमर, आज़ाद, रस भरा गीत—जी चाहता है, सब बंधन तोड़ दूँ ; इस रोज़-रोज़ की ग़ुलामी से छुटकारा पा लूँ ; सब कुछ देकर आज़ादी ले लूँ—गाती फिरूँ ; ढोर-डंगर चराती फिरूँ और दोनों बाहें फैलाकर जीवन को अपने आलिंगन में भर लूँ ।

[कान्त प्रवेश करता है ।]

कान्त—किससे बातें कर रही हो रत्न ?

(कुर्सी पर बैठ जाता है)

रत्नी—(आँखें फैलाये उन्मद-सी खिड़की में देखती हुई) चरवाहे गा रहे हैं—

कान्त—कहां गा रहे हैं ?

रत्नी—यह सुनो...यह सुनो...

कान्त—मुझे तो कुछ सुनाई नहीं देता ।

रत्नी—(आँखें खिड़की से हटा कर) शायद वे दूर चले गये हैं । पर मैं अब भी उनका गीत सुन रही हूँ । वह मेरे कानों में अब भी गूँज रहा है । रस भरे जीवन का रस भरा गीत !

कान्त—(कुर्सी पर पीछे की ओर को लेटता हुआ) रस भरे गीत जीवन की कटुताओं से निकलते हैं ।

रत्नी—(जैसे अब भी गीत सुन रही है) स्वच्छन्द प्राणों का स्वच्छन्द गीत !!

कान्त—स्वच्छन्द कहाँ, प्राण तो जीवन की कारा में बन्द हैं । जन्म इस कारा की चौखट है ।

(रत्नी चुप रहती है, व्यग्रता से कमरे में घूमने लगती है)

कान्त—और चरवाहे क्या स्वतन्त्र हैं ? (ओठों में हँसता है) प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे का जीवन सुखद और सुनहला दिखाई देता है। चरवाहे समझते होंगे, तुम रानी हो...

रत्नी—(मुड़कर व्यंग से हँसती है) रानी...!

(खिड़की की सिल पर बैठ जाती है)

कान्त—और तुम समझती हो, चरवाहे अपने मन के राजा हैं। जहाँ चाहते हैं, जाते हैं, जो चाहते हैं करते हैं, किन्तु, भूख, प्यास, विपन्नता... ..

रत्नी—परवशता से हज़ार दर्जे अच्छी है। यह रोज़-रोज़ का अपमान, ताने-मेहने, व्यंग-उपहास तन और मन की क़ैद !—मन प्राण स्वतन्त्र हों तो भूख-प्यास सही जा सकती है।

कान्त—(हँसकर) यह किसी भूखे से पूछो।

रत्नी—(उतर कर व्यंग्य से) तुमने अपनी आत्मा को बेच दिया है और अपने चचा के धन पर मौज उड़ाते हुए तुम अपमान सह लेते हो...

कान्त—रत्नी...!

रत्नी—तुमने स्वयं अपनी आत्मा को बेच दियाहै, दास बना दिया है और इस दासता के लिए युक्तियां ढूँढ़ निकाली हैं और तुम कवि कहलाते हो ! काश कवि न होकर तुम मात्र एक चरवाहे होते !!

कान्त—(खोखला क़हक़हा लगाता है और उठकर कमरे में घूमता है) चरवाहा। (हँसता है) मैं चरवाहा ही तो हूँ। कल्पनाओं के

ढोर चराता हूँ। प्रायः वे बिखर-बिखर जाते हैं, कई अनजानी खेतियों में चले जाते हैं। मैं इन्हें फिर ढूँढ़-ढूँढ़ कर इकट्ठे कर लाता हूँ।

रत्नी—(फिर जाकर खिड़की में खड़ी हो जाती है और कुछ निमिष चुपचाप बाहर शून्य में देखती है। फिर मुड़कर दबी हुई घृणा से) तो तुम कल्पनाओं के डंगर ही चराया करोगे। जीवन के ढोर हाँकना तुम्हारे भाग्य में नहीं। कल्पना, कल्पना, कल्पना और बस। —गोविन्द को देखा था...

[बिल्लू कन्धे पर बस्ता लटकाये दरवाज़े से झाँकता है]

बिल्लू—रत्नी, गोविन्द आ गया।

रत्नी—कहाँ है ?

बिल्लू—थाने में है। शायद डाकू पकड़े गये हैं। हथकड़ियाँ पहने खड़े थे। मैंने स्कूल से आते हुए देखा उन्हें।

[फिर मुँह फेरकर चला जाता है]

रत्नी—(अपनी बात को ज़ारी रखते हुए) वह कभी भूखा प्यासा हो सकता है, उसके तन पर इतने बहुमूल्य वस्त्र भी नहीं हो सकते, पर उसकी आत्मा स्वतन्त्र है और स्वतन्त्र आत्मा का चमत्कार देखा...

कान्त—(खिन्न हँसी से) चमत्कार ?

रत्नी—यह चमत्कार नहीं तो और क्या था। डाकू हमारे मकान पर चढ़े फ़ायर कर रहे थे और समस्त गाँववाले, अपने-अपने मकानों के किवाड़ लगाये, लिहाफ़ों में दुबक गए थे।

कान्त—मैंने फ़ायरों की आवाज़ नहीं सुनी।

रत्नी—तुमने अपने झरोखे भी बन्द कर लिए होंगे।

[किश्नी बस्ता लिए प्रवेश करती है और चुपचाप पुस्तकें अलमारी में रखती है]

रत्नी—यह किसी चमत्कार से कम नहीं। उस समय किसका साहस था जो घर से बाहर निकलता, किन्तु गोविन्द को जब पता चला कि राय धनीराम का मकान लूटा जा रहा है तो वह निधड़क दो साथियों को लेकर चल पड़ा। डाकुओं ने आते-आते मकानों की कुण्डियाँ बाहर से लगा दी थीं। उन्होंने धीरे-धीरे सब कुण्डियाँ खोल दीं और अपने साथियों को जा जगाया। उन्हें फटकारा कि उनके शाह का मकान लूटा जा रहा है और वे घरों में दुबके पड़े हैं। क्या इस प्रकार चुप बने रहने से उनका मस्तक सदैव के लिये नत न हो जायगा, किसी दूसरे गाँव वालों के सामने क्या वे छाती तानकर चल सकेंगे ? दंगलों में गबरूओं को ललकार सकेंगे ? और सबको साथ लेकर वह डाकुओं की प्रतीक्षा में गाँव के मोहाने पर जा खड़ा हुआ।

कान्त—मैं रात देर तक पढ़ता रहा, इसलिये सो गया था।

रत्नी—तुम जागकर भी क्या कर लेते ? जब सारा गाँव बाहर आ गया था, तुम जब भी न आये।

कान्त—मैं...मैं...

रत्नी—(व्यंग से) तुम अपनी कल्पना के डंगर चरा रहे होगे (झुरझुरी-सी लेती है) मैं जीवन पर्यन्त वह दृश्य नहीं भूल सकती। डाकू सामान से भरी हुई मोटर तो ले गये, किन्तु उनके चार साथियों को गोविन्द और उसके सहचरों ने उलझा लिया और वह द्वन्द्व (फिर झुरझुरी लेती है) मैं कभी नहीं भूल सकती।

किश्नी—(पुस्तकें रखते-रखते मुड़कर) सिर पर तवे बाँधकर आये थे डाकू !

रत्नी—और फिर उनकी लाठियाँ पोरेवाली थीं—सरियाँ पड़ी हुई थीं उनमें—जिस पर एक पड़ जाती वह फिर न उठता। शोर सुनकर दूसरे गाँव वाले भी आ गये, किन्तु किसमें दम था जो उनके सामने टिक पाता—ऐसी लाठी चलाते थे डाकू (लम्बी साँस लेती है) वह साँसी मर गया, पर उसकी वीरता मैं कभी न भुला सकूँगी। विद्युत के से वेग से उसकी लाठी घूमती थी। मुझे याद है तीन बार डाकुओं ने गाँववालों को पीछे धकेल दिया—यदि एक लाठी की चोट से गिरता, तो चार भय ही से गिर पड़ते—गोविन्द के समस्त साथी घायल हो गये, किन्तु वह डटा रहा और वही था जिसने उस साँसी को मार गिराया। मरते समय उसने कहा था, 'मैं उस वीर को एक नज़र देखना चाहता हूँ जिसने मुझे गिराया है।'

किश्नी—पचास डाके अब तक वह डाल चुका था।

रत्नी—मरने से पहले गोविन्द के हाथ पर अपना हाथ रखकर साँसी ने कहा था, "जीवन का मेला ही उठ गया मित्र, नहीं तू मेरे साथियों में होता।"

[जोश में एक दो बार कमरे में चक्कर लगाती है। किश्नी पुस्तकें रखकर जाने लगती है]

—(किश्नी से) किश्नो तनिक देखना—गोविन्द थाने से आया है या नहीं ?

किश्नी—मुझे तो भूख लगी है। मैं पहले जाकर खाना खाऊँगी, भूखी ही पाठशाला चली गई थी।

रत्नी—बड़ी अच्छी है मेरी किश्नी बहिन ! तनिक देखना जाकर। मैं जानना चाहती हूँ, कितने डाकू पकड़े गये हैं और कितने रह गये हैं।

किश्नी—गोविन्द की बहिन अभी यहाँ आएगी। वह आते-आते अवश्य ही पता लेकर आएगी। मैं तो जा रही हूँ।

[चली जाती है]

रत्नी—गोविन्द एक को भी नहीं छोड़ेगा। उसने कहा था—"रत्नी, मैं एक-एक डाकू चुन लाऊँगा। पुलिस के भरोसे रहे, तो मिल चुके डाकू और शाह अभी तक आए नहीं !" और वह अपने साथियों को लेकर पुलिस के साथ चला गया।—उसका शरीर लोहूलोहान हो गया था। मैंने उसकी मरहम-पट्टी की तो हँसकर कहने लगा—"यह तो साधारण चोटें हैं रत्नी। ऐसी तो खेल-खेल में आ जाती हैं।"

कान्त—(**व्यंग से हँसकर**) जब तुम जैसी कोई युवती पट्टी बाँध रही हो, तो युवकों के गहरे घाव भी साधारण खरौंचें बन जाते हैं।

रत्नी—बेकार बैठे-बैठे तुम विष संचय करते रहते हो और बस—

कान्त—(**उठता हुआ**) विष.....

(**हँसता है और खिड़की में जा खड़ा होता है**)

रत्नी—और मैं कई बार सोचती हूँ राजा होता तो उसका बल देखती बड़ी डींगें मारा करता है। गोविन्द को लड़ते देखता तो लाठी उठाना छोड़ देता।

कान्त—राजा तो मुझ सा नहीं।

रत्नी—वह सदैव अपने बल-पराक्रम के सम्बन्ध में गप्पें हाँका करता है। होता तो उसकी भी परीक्षा हो जाती।

कान्त—वह बलवान है।

रत्नी—जब तक अवसर न पड़े सभी बलवान होते हैं।

कान्त—किन्तु अब तक तो तुम उसके बल-पराक्रम के गीत गाया करती थीं। मैं तो भला कल्पना की दुनिया में बसनेवाला निर्बल कवि हूँ पर राजा तो.....

रत्नी—मैंने पराक्रम का नाम सुना था, उसे आँखों से न देखा था (**फिर झुरझुरी लेती है**) मैं कभी नहीं भूल सकती। जब से मैंने होश सँभाला है, मैंने ऐसी लड़ाई नहीं देखी। क़िस्से कहानियों में अवश्य डाकुओं का हाल पढ़ती थी—सोचा करती थी—किस प्रकार दस-पन्द्रह डाकू सारे गाँव को डराकर सब कुछ लूट-खसोटकर ले जाते हैं, किन्तु उस रात मैंने स्वयं देखा...

कान्त—तुम रात की बात करती हो। वे दिन-दहाड़े सब कुछ लूट ले जाते हैं।

[**खोखली हँसी हँसता है**]

रत्नी—(**अपनी बात जारी रखते हुए**) अभी मेरी आँख लगी ही थी कि मैंने बन्दूकों की आवाज़ सुनी। इसके बाद ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सारे गाँव को साँप सूँघ गया हो। नम्बरदार के घर से तवेवाले बाजे की आवाज़ आ रही थी। सदना अपनी तरंग में मस्त गा रहा था, किन्तु बन्दूक की आवाज़ सुनते ही सब दम साधकर रह गये। मेरा जी धड़कने लगा। मैंने करवट बदली। फिर बन्दूक के फ़ायर की आवाज़ आई। रात के सन्नाटे में वह आवाज़ दूर तक गूँजती हुई चली गई। और फिर निस्तब्धता जैसे और भी गहरी हो गई। ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे हवा भी डरकर रुक गई हो। मेरा दिल धँसने-सा लगा। जी कड़ा करके मैं खिड़की में आई।

कान्त—किन्तु मैंने सुना कि बलबीर बाहर बैठा था। शोर न मचाया उसने ?

रत्नी—बलबीर ने चोरबत्ती जलाई थी और उसके प्रकाश में मैंने देखा—दस-बाहर आदमी सिरों पर मुँड़ासे बाँधे आ रहे हैं। उनकी आकृतियाँ मुँड़ासों के कारण दिखाई न देती थीं। आगे-आगे चलने वालों के हाथों में बन्दूकें थीं। उनमें से एक ने फ़ायर किया। मैंने आँखें बन्द कर लीं—दूसरे क्षण मैंने देखा—बलबीर की मुश्कें कसी हुई हैं। सहसा सब कुछ मेरी समझ में आ गया। मैं भाग कर मामी के कमरे में गई, किन्तु इससे पहले कि मैं मामी से कुछ कहती डाकू आ गये।

कान्त—मामी ने शोर न मचया ?

रत्नी—उनके पास बन्दूकें थीं। "किसी ने चूँ भी की तो उसे गोली मार दी जायगी" उन्होंने कहा और बन्दूक दिखाकर चाबियाँ माँगीं। मामी ने कहा, "हमारे पुरुष चाबियाँ ले गये हैं। हमारे पास चाबियाँ कहाँ ?" तब डाकू बँधे हुए बलबीर को ले आये और उसे धरती पर लिटा दिया—इससे पहले कि डाकू बन्दूक उठाते, मामी ने चाबियाँ फेंक दीं।—चार लड़कियों के बाद तरस-तरस कर पाया हुआ बेटा—"इसे कुछ न कहो, जो लेना है ले जाओ" मामी ने कहा और दोनों हाथों से चेहरा ढक लिया। गैरेज से डाकुओं ने मोटर निकाली और सामान लूटने लगे। एक डाकू बन्दूक लेकर हमारे सामने खड़ा रहा—नाटा-सा क़द, मैला फटा तहबन्द और कमीज़—मैं समझती थी—डाकू बहुत भयानक, लम्बे, तगड़े, राक्षसों से डरावने होते होंगे, किन्तु उसे देखकर तो मुझे निराशा हुई। एक-दो बार मेरे जी में आई कि एक ही बार उछलकर उसे गले से पकड़ लूँ और उसका गला इतना घोटूँ, इतना घोटूँ कि

उसका दम निकल जाए। किन्तु फिर यह सोच कर मैंने अपने आपको रोका कि डाकू कहीं बलबीर ही को न मार दें। बस डाकुओं ने सब कुछ लूटा और मोटर में डालकर चल दिये।

कान्त—(खिड़की में बैठा सिर्फ टाँगें हिलाता है)

रत्नी—(कमरे में चुपचाप एक-दो चक्कर लगाकर) जब वे तनिक दूर चले गये तो मामी ने चिल्लाना शुरू किया। तब लोग घरों से बाहर निकले और 'क्या हुआ', 'क्या हुआ' कहते हुए इकट्ठे हो गये। **(अतीव उपेक्षा से)** भगोड़े ! मुझे उन पर अत्यन्त क्रोध आया। मन में आई कि बन्दूक यदि हाथ में हो तो उन सबको भूनकर रख दूँ।

[आवेश में एक-दो बार फिर कमरे में घूमती है]

—तभी एक व्यक्ति भागा-भागा आया और उसने बताया कि गोविन्द और उसके साथियों ने कुछ डाकुओं को घेर लिया है और फिर जो जिसके हाथ में आया लेकर भागा। मैं भी इस भीड़ में चुपचाप खिसक गई—राजा होता तो देखती उसमें कितना बल है। तुम कहते हो वह बहादुर है, पर अखाड़ों की वीरता और लड़ाई की वीरता में अन्तर है। अखाड़ों में अपनी लाठियों के चमत्कार दिखानेवाले कई पराक्रमी उस दिन जी छोड़ गये।

कान्त—**(चुपचाप सीटी बजाता है)**

रत्नी—धन की गोद में पली हुई वीरता कायरता ही का दूसरा नाम है।

कान्त—**(व्यंग्य से हँसता है)**

रत्नी—**(चीख़ कर)** मैं क्या ग़लत कहती हूँ ?

कान्त—(**खिड़की से उतर कर कमरे में सिर नीचा किये हुए घूमता हुआ**) पंछी को पर लग गये हैं। वह अब बहुत देर तक घोंसले में न रहेगा।

रत्नी—क्या कहते हो ? तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।

कान्त—वे तुम्हारी समझ में आने के लिए नहीं।

रत्नी—फिर ?

कान्त—सोचता था कहीं तुम स्वयं डाकुओं में शामिल न हो जाओ।

रत्नो—(**हँसती है**) मैं...डाकू.....

कान्त—तुमसे डाके का हाल सुनते-सुनते ऐसा लगा जैसे तुमने इस डाके में रस लिया है, जैसे इस डाके से तुम्हें तनिक भी भय नहीं लगा।

रत्नी—भय, मुझे...

कान्त—तुम्हारी मामी अचेत हो-हो जाती है; तुम्हारे घर पर सहम छाया हुआ है; सारा गाँव भय के मारे जैसे सिकुड़ रहा है, किन्तु तुम...

रत्नी—डाकू तो पकड़े गये हैं और जो हैं, वे पकड़े जाएँगे।

कान्त—पर...

रत्नी—और कदाचित् सामान भी मिल जाए।

कान्त—पर तुम ..

रत्नी—मैं उनकी वीरता को सराहे बिना नहीं रह सकती (**झुरझुरी-सी लेती है**) मैं कभी नहीं भूल सकती वह...

कान्त—और यदि वे तुम्हें उठा कर ले जाते ?

[**जसोदा जल्दी-जल्दी प्रवेश करती है।**]

जसोदा—कुछ सुना तुमने रत्नी ?

रत्नी—क्या ?

जसोदा—डाकू तुम्हें उठाने आए थे।

रत्नी—तुमसे किसने कहा है ?

जसोदा—सारे गाँव में इस बात की चर्चा हो रही है ! और भैया गोविन्द ने भी यही बताया—शेष सब डाकू पकड़ लिये गये हैं।—एक चिड़ीचाँदी का था, दो माजरे के थे और एक हमारे ही गाँव का था...

रत्नी—हमारे ही गाँव का ?

जसोदा—बस डाका डलवाने के बाद चुपचाप अपने घर में जाकर सो रहा।

रत्नी—पर था कौन ?

जसोदा—तिंगल।

कान्त और रत्नी—तिंगल !

जसोदा—हाँ तिंगल—चरवाहा !

रत्नी—नीच ! मैं समझती थी अब वह सुधर गया है। जब भी उसके बाड़े के पास से गुज़रती थी, तरह-तरह के आवाज़े कसा करता था। कुछ दिन तक तो मैं चुप रही, फिर एक दिन मुझे क्रोध आ गया गर्दन से पकड़ कर मैंने उसे पीट दिया।

जसोदा—तभी, जब भैया गोविन्द से भी उसकी हाथापाई हो गई थी।

रत्नी—और मामी ने मुझ पर सौ-सौ लांछन लगाये थे।

जसोदा—तभी से वह तुमसे खार खाए बैठा है। गोविन्द ने बताया कि तिंगल ने डाकुओं को इस शर्त पर ही तुम्हारे घर का सब भेद बताने का वचन दिया था कि वे घर को लूटने के अतिरिक्त तुम्हें उठाकर ले जाने में भी उसकी सहायता करें और भैया तो बताते थे कि वास्तव में तिंगल ही डाकुओं को बुलाकर लाया था।

रत्नी—कमीना !

जसोदा—डाकुओं ने उससे प्रतिज्ञा की कि हम रत्नी को उठाने में तुम्हारी सहायता करेंगे, किन्तु अपना काम निकालकर उन्होंने तुम्हें उठाकर ले जाने से इन्कार कर दिया। 'धन-माल तो छिपाया जा सकता है' उस साँसी ने कहा था, 'पर इसे कहाँ छिपा कर रखेंगे ?' अभी तुम्हारे मामा के सामने थाने में एक डाकू ने यही बयान.....

कान्त—रत्नी के मामा आ गये ?

रत्नी—(अत्यन्त उपेक्षा से) नीच !...

कान्त—(ज़रा हँसकर) अब तुम उसको चाहे हज़ार गालियाँ दे लो पर यदि वे तुम्हें उठाकर ले जाते.....

[हँसता हुआ चला जाता है]

रत्नी—यदि वे मुझे उठाकर ले जाते, (मुट्ठियाँ भींचकर) यदि वे मुझे उठाकर ले जाते (मुट्ठियाँ ढीली छोड़कर) मैं प्रसन्न होती.....

जसोदा—क्या कहती हो रत्न ?

रत्नी—(आर्द्र कंठ से) तुम्हें मालूम नहीं जसोदा। ज्योंही मामी को इस बात का पता चलेगा, वे डाके का सारा अपराध मुझी पर थोप देंगी। पहले ही वे सदा मुझे कोसती रहती हैं कि जब से यह लड़की घर में आई है बिपत पर बिपत आ रही है—बलबीर को ज़ुकाम हो जाए, मामा को व्यापार में घाटा आ जाए, मामी की कमर दुखने लगे, किश्नी परीक्षा में फेल हो जाए, सब मेरे कारण (सिसकती है) मैं कहती हूँ—मामाजी क्यों मुझे मेरी मरती हुई माँ की छाती से उठा लाये ? क्यों न मुझे उसके साथ ही मर जाने दिया **(और भी ज़ोर से सिसकती है)** क्या मुझे इस तरह दिन-रात सूइयाँ चुभोने के लिये ! निशिदिन मेरे दिल में कचोके लेने के लिए—

जसोदा—सन्तोष करो...

रत्नी—वे तो पहले ही तीन दिन से मेरे दुर्भाग्य को, मेरी कुदृष्टि को मेरी बुरी छाया को कोस रही हैं। जब उन्हें ज्ञात होगा कि यह डाका तिंगल ने मेरे ही कारण डलवाया है, तो क्या वे मुझे जीने देंगी। जानती हो, जब मैंने तिंगल के मुँह पर चपत लगाई थी तो उन्होंने मेरी कितनी निन्दा की थी। और अब—अब वे क्या-क्या बातें न बनाएँगी।

[बैकग्राउंड में दूर चरवाहों के गाने की आवाज़ आती है, जो धीरे-धीरे समीप आती जाती है]

हे जी...हाँ आँ,...हाँ आँ,...हाँ आँ, हाँ
म्हारा जंगल का सब साज सदा रहती है दूब हरी
अरर, रर, रा
अरर, रर, रा
अरर, रर, रा

रहती है दूब हरी—
सदा रहती है दूब हरी—

रत्नो—(**दीर्घ निश्वास छोड़ती है**) ओह ! कहीं-मैं इन चरवाहों की भाँति स्वच्छन्द, स्वतन्त्र, रोज़-रोज़ के तानों, मेहनों, कोसनों से स्वतन्त्र, इस परवशता और पराधीनता से मुक्त, गाती नाचती घूम सकती। (**अचानक मुड़ती है**) तुम्हारे भैया अभी घर नहीं आये जसोदा ?

जसोदा—भैया आ गये हैं। उन्हीं का सन्देशा लेकर तो आई थी। उन्होंने कहा है—रत्नी से कहना, मैंने अपना प्रण पूरा कर दिया है।

रत्नो—तुम उनसे जाकर कह दो—मैं मिलने आती हूँ, कहीं जाएँ नहीं।

जसोदा—उन्होंने कहा था—रत्नी से कहना, यदि आये तो मुझे बालू के कुएँ के पीछे, शिव के मन्दिर में मिले।

रत्नो—बालू के कुएँ के पीछे ? .....बालू के किस कुएँ के पीछे ?

जसोदा—उसके जो स्टेशन के पास है। घर पर तो भीड़-सी लगी रहती है। एक आता है एक जाता है !

रत्नो—तुम जाओ। कहना मैं अभी दस मिनट में आ रही हूँ। मैं तो उनसे बहुत कुछ पूछना चाहती हूँ। कितने डाकू पकड़े गये, ? किस प्रकार पकड़े गये ? सब कुछ मैं उनसे सुनना चाहती हूँ।

[जसोदा चली जाती है चरवाहों के गाने की ध्वनि और समीप आ जाती है।]

किसी के रे मोटर घोड़ा सै रे गड्डी
किसी के रे सुन्दर महल मै रे मड्ढी
म्हारा मन का तख़त रे ताज, करेंगे हो बेड़ा पार हरी
हे जी हाँ...आँ, हाँ...आँ, . हाँ...आँ.....हाँ

[क्षण भर के लिए यह ध्वनि स्टेज पर छाकर मौन हो जाती हैं]

रत्नी—(आतुरता और आवेग से कमरे में तेज़-तेज़ घूमती है) ओह, ओह, मैं इस क़ैद में नहीं रह सकती। यह रोज़-रोज़ का तिरस्कार, अपमान, लांछना, निन्दा नहीं सह सकती। अभी मामी को पता लग जायेगा कि तिगल मेरे ही कारण डाकुओं को बुला लाया था और फिर सारे व्यंग, समस्त ताने, सब कोसने जाग उठेंगे और विषबुझे तीरों की भाँति मेरी नस-नस छेदेंगे।

मामी—(बाहर से मामी और मामा के बातें करने की आवाज़ आती है) मैं तो पहले ही कहती थी कि यदि यह कुलच्छिनी इस घर में रही तो न जाने कौन कौन से उपद्रव का मुँह हमें देखना पड़ेगा।

रत्नी—(शीघ्र-शीघ्र बायीं ओर के दरवाज़े से निकलती हुई) ओह ! विषाक्त जिह्वा लिये मामी इधर ही आ रही हैं।

मामा—(बाहर से) इसमें इस बेचारी का क्या दोष है ?

मामी—(बाहर से) इसका नहीं तो और किसका है। न जाने दिन भर कहाँ कहाँ आँखें मटकाती फिरती है ? लज्जा-शरम तो जैसे बेच कर खा ली है इसने।

[रत्नी के मामा रायधनीराम, मामी, बुआ, कान्त, कुन्तू और एक दो स्त्रियाँ प्रवेश करती हैं। मामी और मामा आगे-आगे हैं और शेष सब पीछे-पीछे। मामा, कान्त और बुआ कुर्सियों पर बैठ जाते

हैं। मामी खिड़की में बैठती है। शेष सब खड़े रहते हैं

मामा—(कुर्सी पर बैठते हुए) बलबीर की माँ तुम कैसी बातें करती हो ?

मामी—(मुँह बिचकाकर) मेरी बातें तो आपको सदा ज़हर लगती हैं। सियानी लड़की घर में आराम से बैठती है, इसकी भाँति गलियों की धूल नहीं छानती फिरती। मेरा माथा तो उसी दिन ठनका था, जिस दिन तिंगल के मुँह पर इस निर्लज्ज लड़की ने थप्पड़ दे मारा था, उसी दिन मैंने कहा था कि यह कम्बख्त अवश्य कोई न कोई बिपत लाएगी। मेरे भी तो आखिर लड़कियाँ हैं, उन्हें कोई क्यों नहीं छेड़ता (और भी मुँह बिचका कर) मक्खियाँ वहीं मँडराती हैं जहाँ मधु होता है।

मामा—तुम क्यों व्यर्थ ही उसे कोस रही हो। किसी में साहस होता है किसी में नहीं। कोई किसी दुष्ट की दो बातें सुनकर चुप रह जाती है, कोई चुप नहीं रह सकती।

मामी—आपके बढ़ावे ही ने तो उसे इतना साहस दिलाया है कि वह हर ऐरे-ग़ैरे के मुँह आती है, फिर तिंगल...

मामा—(कुर्सी से उठते हुए जलकर) तिंगल बदमाश है।

मामी—(मुँह बिचकाकर) और यह भलीमानस ! एक बिगड़े बदमाश चरवाहे से उलझना कहाँ की भलमनसाहत है। भली लड़कियाँ अपने मानापमान का ध्यान रखती हैं। इसकी भाँति गुंडों से उलझती नहीं फिरतीं। ढँढोरा नहीं पीटती फिरतीं। (और भी मुँह बिचकाकर) देख लिया न अपनी इस लाड़ली की भलमनसाहत का परिणाम। (रोने लगती है) न भाई, मुझको ऐसी भलमनसाहत न चाहिए।

अब तो ईश्वर की कृपा से सब कुछ मिल गया। नहीं, हम तो लुट गये थे **(और भी भरे गले से)** जब डाकुओं ने बलबीर को धरती पर लिटा दिया और बन्दूक चलाने लगे तो मेरे हाथ-पाँव फूल गये। न बाबा, यह भलमनसाहत हमें रास न आएगी। आज तिंगल आया है, कल कोई और चढ़ दौड़ेगा।

मामा—**(फिर कुर्सी पर बैठते हुए)** तो क्या मैं उसे भट्टी में झोंक दूँ ?

मामी—भट्टी में क्यों झोंक दे। सियानी हो गई है, हाथ पीले कर दें। अपने घर जाए और मेरे घर से यह बला टले।

कान्त—बला...

[व्यंग से हँसता है]

मामी—तुम नहीं जानते बेटा, जब से यह कुलच्छिनी आई है, घर पर बीमारी और बिपत की छाया मँडरा रही है। इतनी देर हो गई, सुख शान्ति से दिन बीत रहे थे। कभी काहे को ऐसी बातें देखी-सुनी थीं और आप उठा लाये इसे। भला उसकी सुसरालवाले मर गये थे—बिल्ली के भागों छींका टूटा। इधर ये लड़की उठा लाये उधर इनके बहनोई ने दूसरा विवाह कर लिया।

कान्त—लेकिन मामी जी.....

मामी—तुम नहीं जानते बेटा, कई बच्चों की छाया अशुभ होती है। कई बच्चे आते हैं सुख और सम्पन्नता साथ लाते हैं, कई आते हैं रोग और बिपत लाते हैं। मलावी की भतीजी ही को देख लो। जब से घर में आई बेचारी पर बिपत के पहाड़ टूट पड़े। पहले पति मरा, फिर देखते-देखते युवा पुत्र हैज़े का शिकार हो गया। फिर चरनी पर

खड़ी-खड़ी दोधार गाय अफारे से गिरकर मर गई। वह तो भगवान की दया से शीघ्र ही मलावी को उससे छुटकारा मिल गया, नहीं तो जाने और कौन-सी बिपत्तियाँ टूटतीं उसके घर पर!

मामा—अच्छा हुआ जल्दी मर गई नहीं जाने कितनी दुर्दशा होती उसकी।

मामी—(सुनी अनसुनी करके) और फिर ले ही आये थे तो पाला-पोसा अब उसे कहीं किनारे लगाएँ।

मामा—तो कहाँ भाड़ में झोंक दूँ। लड़का भी मिले। यों ही कहीं ऐसी-वैसी जगह ब्याह दूँ, लड़की की सारी आयु रोते बीत जाए और बहिन की आत्मा...

मामी—(मुँह बिचकाकर) बहिन होती तो न जाने किस राजकुमार से अपनी इस बेटी का विवाह करती।

[बैकग्राउंड में गाड़ी के स्टेशन पर आने और रुकने की आवाज़ आती है। इंजन 'शाँ-शाँ' करता है]

मामा—शाम की गाड़ी तो आ गई। वृन्दावन आ ही रहा होगा। जब डाके का समाचार मिला तो हम बैठे हिसाब-किताब देख रहे थे। उसने कहा—'तुम चलो मैं अभी तुम्हारे पीछे गाड़ी में आता हूँ।'

बुआ—मैं कहती हूँ बेटा राजा के पिता से क्यों नहीं पूछ देखते रत्ती के लिए?

मामा—लड़का कुछ खुले विचारों का है बुआ। मैं नहीं चाहता कि वह मुझे इनकार कर दे। एक बार बातों-बातों में मैंने अपनी शान्ता के लिए उसका दिल टटोला था। उसने कहा था—चाचाजी

में अभी विवाह ही नहीं करना चाहता। गाँव का मामला है और बात कहकर मैं गँवाना नहीं चाहता।

[बैकग्राउंड में गाड़ी की सीटी और फिर उसके चलने की आवाज़ आती है]

कान्त—किन्तु दो वर्षों में तो—वह किसी ने कहा है न—पुल के नीचे से काफ़ी पानी निकल जाता है।

बुआ—माता-पिता का इकलौता लड़का है। मन आए सो करता है। बातों-बातों में मुझे कुछ ऐसा लगा कि वह रत्ती को पसन्द करता है यदि तुम उसके पिता से पूछ देखते...

[राजा जल्दी-जल्दी दाख़िल होता है, साँस फूली हुई है]

राजा—मैंने यह क्या सुना चाचाजी ? यह किस दुष्ट का काम है ? पिछले पचास वर्षों में गाँव में कभी ऐसी दुर्घटना नहीं हुई। मैं तो माजरे गया हुआ था वहीं मुझे पता चला। उसी क्षण कार लेकर चल पड़ा। कुछ पता चला डाकुओं का ? चोरी-यारी तो वसीले के बिना होती नहीं। किस पर सन्देह है आपको। मैं तो सालों का...

मामा—तुम्हारी कृपा है बेटा। तिंगल की बदमाशी थी। उसी ने डाकुओं को बुलाया और उन्हें भेद बताया था, किन्तु डाकू पकड़े गये हैं। गोविन्द ने बड़े साहस से मुकाबिला किया। सारे डाकू पकड़ लिये गये हैं और सामान भी मिल गया है।

राजा—मैं होता तो एक को भी न जाने देता। सबको भूनकर रख देता।

कान्त—उनमें से भी कुछ के पास बन्दूकें थीं। रत्ती कहती थी...

राजा—कहाँ है रत्ती, उसे देखा नहीं। क्या कहती थी वह...

[वृन्दावन घबराया हुआ प्रवेश करता है]

वृन्दावन—मैं कहता हूँ धनीराम, यह रत्नी गोविन्द के साथ कहाँ ई है ?

मामा—रत्नी ?

राजा—गोविन्द के साथ...

वृन्दावन—मैंने अभी चलती गाड़ी में उसे गोविन्द के साथ बैठे खा।

मामा—(उठकर) क्या कहते हो ?

वृन्दावन—हम गाड़ी से उतरकर बातें करते हुए लाइन-लाइन ले आ रहे थे कि गाड़ी हमारे पास से गुज़री और हमने रत्नी और विन्द को एक डिब्बे में साथ-साथ बैठे देखा। मुझे देखते ही रत्नी कर पीछे हटी किन्तु मैंने पहचान लिया।

मामा—(चीख़कर) कुन्तू मोटर तैयार कर !

(जल्दी-जल्दी निकल जाते हैं)

मामी—मैं तो पहले ही कहती थी कि यह लड़की कुल को कालख गायेगी।

[माथा ठोंकती हुई निकल जाती है। सब उसके पीछे-पीछे चली जाती हैं]

राजा—रत्नी गोविन्द के साथ भाग गई—उस फटेहाल चरवाहे के थ, जिसका काम अपने चचा के ढोर-डंगर चराना है।

कान्त—जब चचा किसी अनाथ भतीजे की ज़मीन जायदाद दबा तो ग़रीब भतीजे के लिए इसके अतिरिक्त और चारा भी क्या रह ता है ! और फिर रत्नी तो चरवाहों का जीवन पसन्द करती है। भी कुछ देर पहले वह कहती थी.....

राजा—(गरज कर) मैंने बचपन में बहुतेरे ढोर चराये हैं औ मैं जानता हूँ जब मेरी गाय को कोई दूसरा हाँककर ले जाए तो मुझे क्या करना चाहिये ।

[तेज़ी से निकल जाता है]

कान्त—(उठकर अँगड़ाई लेता हुआ) जीवन...जीवन...जवानी...

[पार्श्व में चरवाहों के गाने की आवाज़ आती है जो धीरे-धीरे स्टेज पर छा जाती है]

हे जी हाँ आँ, हाँ आँ, हाँ आँ, हाँ

[कान्त की जँभाही के मध्य पर्दा गिर जाता है]

मैमूना

पात्र

मैमूना—आठ नौ वर्ष की बच्ची—दबी दबी घुटी घुटी। बचपन की चंचलता उसके मुख पर यों झलकती है जैसे राख में दबी चिंनगारी।

फ़रीद—दो अढ़ाई वर्ष का बच्चा। मैमूना का भाई। लाड प्यार में पला, चंचल उद्दंड।

शीमा—दो अढ़ाई वर्ष की बच्ची। फ़रीद की सहेली, शर्मीली, लजीली पर चतुर चालाक।

आमना—मैमूना की माँ। अठाईस तीस वर्ष की सुन्दर युवती—देखने में केवल अठारह बीस वर्ष की लगती है।

अरशद—आमना का दूसरा पति। कवि तो नहीं किन्तु कवि-सुलभ गुणों से युक्त है।

साजिद—आमना का पहला दिवंगत पति।

ख़ैरन—एक बूढ़ी दासी जो साजिद के समय से है।

बतूलन—अरशद की नौकरानी जो न बूढ़ी है न जवान।

[पर्दा मकान की ऊपरी मंज़िल के एक कमरे में उठता है। सामने दीवार में दायीं ओर एक दरवाज़ा है जो बरामदे में खुलता है। इस बरामदे में बाईं ओर नीचे से सीढ़ियाँ आती हैं और दायीं ओर रसोईघर है, किन्तु सीढ़ियों का या रसोईघर का दरवाज़ा इस कमरे से नज़र नहीं आता। हाँ, बरामदे का बड़ा झरोखा साफ़ दिखाई देता है। और इस झरोखे से आनेवाली धूप बताती है कि दोपहर का समय है और सूरज ख़ूब चमक रहा है। सामने की दीवार में बाईं ओर भी दरवाज़ा है जो रसोईघर को जाता है। इस प्रकार रसोईघर बरामदे में भी खुलता है और कमरे में भी।

दायीं दीवार में भी दरवाज़ा है। जो ड्राइंगरूम को जाता है। बाईं दीवार में वरे को एक बड़ी खिड़की है जिसमें बड़े बड़े शीशे लगे हैं।

यह कमरा एक प्रकार से खाने और बैठने का कमरा है, क्योंकि इसमें सामने के दोनों दरवाज़ों के मध्य एक खाने की मेज़ रखी है जिसके चारों ओर कुर्सियाँ लगी हैं।

खिड़की की ओर को कौच का सेट और तिपाई भी पड़ी है। पर्दा उठते समय डाइनिंग टेबल की कुर्सियाँ मेज़ से लगी हुई हैं, केवल उनका पृष्ठ भाग दिखाई देता है। दाईं और बाईं दीवारों में दरवाज़ों के दोनों ओर दो अलमारियाँ हैं जिनके शीशों से चाय और खाने-पीने के सेट दिखाई देते हैं। बरामदे में खुलनेवाले दरवाज़े के अतिरिक्त शेष सब दरवाज़ों पर पर्दे पड़े हुए हैं।

ख़ैरन बी एक कौच से पीठ लगाए, पाँव पसारे बैठी दिखाई देती है। मैमूना उसके घुटनों में सिर दिये रो रही है। ख़ैरन उसे पुचकारती है पर वह निरन्तर सिसके जा रही है।]

ख़ैरन—न मेरी मम्मो। बस, बस, इस तरह भी जी छोटा किया करते हैं। अरे वह आनेवाले ही होंगे।

[मैमूना ज़ोर से सिसकती है]

(**अपने आप**) इस बेचारी का भी क्या दोष! बेगम तो इस तरह सलूक करती हैं जैसे अपनी जाई न हो, कहीं से गिरी पड़ी उठा लाई हो। (पाँव सिकोड़कर मेमूना को थपथपाते हुए) बस, बस, अब कोई दम में आ जाएँगे। चल तुझे नरगिस के फूलों का गुलदस्ता बना दूँ—सुन्दर पीले-पीले सफ़ेद फूलों का!

[मैमूना और भी ज़ोर से सिसकती है। ख़ैरन बी बरामदे में जाती है और दूसरे ही क्षण फूलों का एक छोटा-सा गुलदस्ता बना लाती है। मैमूना वहीं बैठी लगातार सिसकती रहती है]

ख़ैरन—(उसे गुलदस्ता देते हुए) ले बेटी, देख कितने ख़ूबसूरत फूल हैं।

[मेमूना नहीं लेती और सिसकते हुए उसकी गोद में सिर छिपा लेती है]

—बच्ची ही तो है। सात-आठ बरस भी कोई उमर होती है। बाट देखते-देखते जरा-सा मुँह निकल आया बेटी का। पपोड़ियाँ जम गई होठों पर। ले जाते साथ तो क्या था?

[दूर से मोटर के हार्न की आवाज़ सुनाई देती है।]

—लो वह आ गये।

(मैमूना सिर उठाती है)

—सुनो मोटर के हार्न की आवाज़।

[पार्श्व भूमि में कोई मोटर हार्न बजाती हुई निकल जाती है]

—ये कम्बख्त मोटरें भी एक जैसी आवाज़ निकालती हैं।

[मैमूना फिर उसकी गोद में सिर छिपाकर
सिसकने लगती है]

—(उसे थपथपाते हुए) और ले गईं फ़रीद को भी साथ, छोड़ना था तो दोनों ही को छोड़ जातीं। कब से राह तक रही है बेचारी। न सुबह से ठीक तरह खाया, न पिया। वहाँ दावत उड़ाने को जी कैसे मानता होगा बेगम का ! मेरे गले से तो एक कौर भी न उतरे।

(मैमूना सिसकी लेती है)

—कम्बख्त शीमा को भी न जाने क्या हो गया ! यों सारा सारा दिन यहाँ चिपकी रहती है, फ़रीद नहीं है न यहाँ आज।

[ऊपर आकाश में हवाई जहाज़ों की गूँज सुनाई देती है]

—अरे जहाज़ !

[मैमूना सिसकती है।]

अरे ये तो कई मालूम होते हैं। उठ देख खिड़की से (उसे छोड़ कर तेज़ी से खिड़की में जाती है, खिड़की दिखाते हुए) अरी मम्मो भाग, देख कितने ढेर से हैं (गिनते हुए) तीन—छः—नौ ! देख, कितने नीचे।

मैमूना—(आँसू निगलते हुए खिड़की की ओर जाते जाते) **नौ.....**

ख़ैरन—(मैमूना को गोद में उठा कर दिखाते हुए) दस, ग्यारह, बारह।

मैमूना—(प्रसन्न होकर) बारह !

[हवाई जहाजों की गूँज पार्श्व भूमि से निकल कर समीप आ जाती है और कुछ क्षणों तक रंगमंच पर छाई रहती है। फिर धीरे-धीरे दूर चली जाती है। और दूर से मोटर के हार्न की आवाज़ सुनाई देती है।]

मैमूना—(ख़ैरन के साथ वापस आते हुए) बारह थे न ख़ैरन ?

ख़ैरन—(जो इस बात पर प्रसन्न है कि उसका ध्यान बटा) हाँ, बारह थे।

मैमूना—(आँसू पोंछते हुए, अत्यन्त सरलता से) ये बम क्यों नहीं गिराते ?

ख़ैरन—(हँसते हुए) रबड़ के गोले तो नहीं होते बम। एक भी गिर जाता तो हम और हमारे साथ सब कुछ भक् से उड़ जाता।

[मोटर के हार्न का स्वर अत्यधिक समीप सुनाई देता है।]

ख़ैरन—(बरामदे के झरोखे में जाते हुए) ले तेरी मम्मा आ गई। गुब्बारे लाई हैं। हवा में उड़ने-वाले। फ़रीद भी आ रहा है भागता हुआ...और शीमा भी झाँक रही है कम्बख्त।

[मोटर की आवाज़ सुनकर मैमूना झरोखे की ओर जाती है कि फ़रीद हाथ में दो गुब्बारे लिये हुए भागता आता है]

फ़रीद—मम्मो, गुब्बारे !

ख़ैरन—अपनी बहिन को भी एक गुब्बारा दे दे फ़रीद बेटा।

फ़रीद—हम नहीं देते।

[अन्दर की ओर भागता है]

मैमूना—कैसे नहीं देता ?

[उसके पीछे भागती है]

ख़ैरन—(उनके पीछे आते हुए) अरे मम्मो...ठहर...मैं ले देती हूँ तुझे गुब्बारा...मम्मो...मम्मो...

[मैमूना फ़रीद के पीछे दाईं ओर के कमरे में भाग जाती है। बरामदे में आमना प्रवेश करती है, हाथ में दो-चार लिफ़ाफ़े उठाये हुए]

आमना—ख़ैरन !

ख़ैरन—आगई बेगम ! बड़ी देर लगाई !

[उसके हाथ से लिफ़ाफ़े लेकर खाने की मेज़ पर रखती है।]

आमना—मैं तो थक गई वहाँ।

[मेज़ के नीचे से कुर्सी निकालकर उसमें धँस जाती है।]

ख़ैरन—अरशद मियाँ कहाँ हैं ? वह नहीं आये ?

आमना—रास्ते में नसीर के यहाँ रह गये (नफ़रत से) चोर चोर मौसेरे भाई ! जब देखो नसीर। न जाने उस के साथ मिल कर क्या मिसकोट किया करते हैं ? न उसे बात करने का सलीका, न बैठने-उठने की तमीज़ ! मैंने कहा—चलिए, फिर कभी आ जाइएगा, मैटनी देखने चलेंगे, माजिद ने कहा था...कहने लगे—तुम कार ले जाओ सीधे कैपिटल पहुँच जाना। मैं नसीर के यहाँ से सीधा वहाँ जा पहुँचूँगा। माजिद को फ़ोन किये देता हूँ, लेकिन मैं पूछती हूँ नसीर के बिना क्या गति नहीं उनकी ?

ख़ैरन—मैटनी तो तीन बजे शुरू हो जाती है, और अब तो अढ़ाई बजने को है।

आमना—देर हो गई रास्ते में फ़रीद पड़ गया पीछे नुमाइश
ो के लिए। सो उतर पड़ी। कुछ सामान-उमान खरीदा। बस
तैयार होकर चली जाऊँगी। साड़ी ही तो बदलनी है।

तूलन कुछ और लिफाफे हाथ में उठाये हुए प्रवेश करती है। और
उन्हें भी लाकर मेज़ पर रख देती है।]

(बतूलन से) यह सब अन्दर रख दे। और देख, आम बर्फ
ाल दे। फ़रीद पड़ जायेगा पीछे अभी।

फ़रीद—(दूसरे कमरे से फ़रीद के चीखने की आवाज़ आती है)
गुब्बारा ले लिया आँ.....आँ.....मेरा गुब्बारा।

[पीटने की आवाज़ आती है]

—दे मेरा गुब्बारा.....

[दूसरे क्षण अन्दर से मैमूना एक गुब्बारा लिये हुए भागती हुई
हैं]

मैमूना—क्यों मैं न लूँगी गुब्बारा...

आमना—(उठकर उसे पकड़ते हुए) क्यों री चुड़ैल! फिर रुलाया
उसे (उसके मुँह पर एक चपत जमाती है) कितनी बार कहा है
ड़ाकर उस ग़रीब को।

फ़रीद—(एक ही गुब्बारा लिये रोता हुआ भागता आता है) मेरा
ारा...मेरा गुब्बारा...

आमना—(उसे गोद में उठाकर) बस, बस, मारा है मैंने मम्मो
मेरा राजा बेटा...ले यह गुब्बारा (उसे गुब्बारा देते हुए झूलती है)
ू तो मेरा बेटा है न (उसे चूमती है) और मैमूना?

फ़रीद—(प्रसन्न होकर) ख़ैरन की बेटी।

[शीमा शरमाती-शरमाती दरवाज़े से झाँकती है]

फ़रीद—(माँ की गोद से उतरता हुआ) शीमा, गुब्बारा ! आ खेलें।

शीमा—(भीतर आते हुए) पहले एक हमें दो।

फ़रीद—ले, (उसे गुब्बारा देता हुआ) आ, उधर खेलें।

[उसे साथ लेकर कमरे में चला जाता है]

मैमूना—(चपत की टीस को बाल-सुलभ विस्मृति में भूलकर और सहसा आमना के पास जाकर भर्राई हुई आवाज़ में) अम्मी !

आमना—क्या है ?

मैमूना—(और भी भर्राई हुई आवाज़ में) अम्मी !!

आमना—(चिढ़कर) परे हो मम्मो, क्या ऊपर चढ़े आ रही है (उसे परे धकेलकर) आते ही सिर पर सवार हो गई, इस चुड़ैल से किसी पल भी छुटकारा नहीं, बोल क्या कहती है ?

मैमूना—(चुप)

आमना—अब फूट भी मुँह से, क्या कहती है ?

[मैमूना रोने लगती है, बतूलन आमों का लिफ़ाफ़ा लिये रसोईघर में चली जाती है]

आमना—अरी ख़ैरन ! क्या आते ही इसे मेरे पीछे लगा दिया। दो घड़ी भी इसे सँभालकर नहीं रखा जाता तुमसे ? देखती नहीं हो अभी आई हूँ। साँस भी नहीं ली कि यह अम्मी की बच्ची चिमट गई। सम्हाल इसे।

ख़ैरन—(प्यार से) चल बेटी, चल उधर फ़रीद भय्या के पास।

आमना—उधर न ले जाना, सतायेगी उसे चुड़ैल। इधर ले जा बरामदे में, मैं ज़रा जाकर यह साड़ी बदल डालूँ।

[अन्दर कमरे में चली जाती है।]

ख़ैरन—चल मम्मो बेटी, तुझे गुड़िया बना दूँ।

[मैमूना सिर्फ़ सिसकती है]

—(उसे पुचकारती है) रोया नहीं करते बेटी। देख मैं बनाती हूँ गुड़िया तेरे लिए।

[मैमूना सिसकते सिसकते जाकर बरामदे के झरोखे में खड़ी हो जाती है। बतूलन सब्जी की टोकरी लिये बाहर आती है और लोबिया काटने लगती है।]

ख़ैरन—(उसका हाथ बटाते हुए) सुबह से बच्ची बाट देख रही है बतूलन बी। भला एक गुब्बारा इसके लिए भी ले आतीं तो.....

बतूलन—बेगम ने तो दो ही लिये थे; लेकिन फ़रीद ने दोनों ले लिये।

ख़ैरन—जरा प्यार ही कर लेतीं। बच्ची प्यार को तरस तरस जाती है। जा खड़ी हुई है झरोखे में (जैसे अपने आप) न जाने दिन भर वहाँ खड़ी खड़ी क्या ताका करती है ?

बतूलन—(दीर्घ निश्वास लेती है) कहा करते हैं, मा किसी की न मरे पर मम्मो को देखकर मैं दुआ किया करती हूँ—अल्लाह बाप किसी का न मरे।

ख़ैरन—साजिद मियाँ तो आँखों पर बिठाये रखते थे अप इस बेटी को। एक बार ज़रा सी हरारत हो गई थी, सारी रात सिरह बैठे रहे थे। आँख तक न झपकी थी उन्होंने।

बतूलन—सुनती हूँ मम्मो की पहली साल-गिरह पर बड़ी भारी दावत की थी उन्होंने। अरशद मियाँ कई बार ज़िक्र किया करते हैं उस दावत का।

ख़ैरन—(धीमे स्वर में) अरशद मियाँ और उनमें गहरी छनती थी। बचपन के दोस्त थे दोनों। बेगम तो अरशद से पर्दा तक न करतीं थीं। सुनते हैं दोनों को मुहब्बत थी बेगम से, लेकिन साजिद जीत गए।

बतूलन—(अस्फुट शब्दों में) पर सुना है शादी कामयाब न थी उनकी। बेगम पछताती रही कि उन्होंने अरशद मियाँ को क्यों न चुना।

ख़ैरन—(और भी धीरे से) अरशद सुन्दर थे, पर साजिद अमीर।

बतूलन—(उसी आवाज़ में) और बेगम न आप खुश रह सकीं न उन्हें खुश रख सकीं।

ख़ैरन—यह तो अल्लाह ही जाने पर कभी तेवर तक न मैले देखे साजिद मियाँ के। इतना कारबार था, इतना कमाते थे, पर तबीयत में ग़रूर नाम तक को न था। मैं थी, नौकर थे, तो भी घर का मामूली से मामूली काम वे अपने हाथ से कर लेते। मम्मो से तो इतना प्यार करते कि अपने हाथ से खिलाते-पिलाते और नहलाते।

जब दफ़्तर से आते, कुछ न कुछ ज़रूर ले आते। कन्धे पर बिठाये फिरा करते अपनी इस बेटी को, पर अब बेचारी.....

[गला भर आता है]

बतूलन—दिल के तो अरशद मियाँ भी दरिया हैं और घमंड भी उनमें नाम को नहीं। कभी कोई बुरी बात नहीं कहते। फिर यही हैं जो इतनी देर बेगम का नाम जपते रहे। नहीं लड़कियों की कमी न थी? मौसा बहुतेरा कहते थे नुसरत के लिए, पर एक बार जो 'न' की तो 'हाँ' नहीं की। दो साल तक मौसी इनकी राह देखती रहीं। आख़िर ब्याह दी लड़की माजिद के साथ। यूँ मम्मो से भी कम प्यार नहीं करते।

ख़ैरन—(धीरे से) साजिद मियाँ जानते थे दोनों की मुहब्बत को, लेकिन क्या मजाल जो उन्होंने कभी आँख भी मैली की हो। धीरे धीरे बेगम ने अपनी दिलचस्पी कम कर दी उनमें। बेचारे सुबह आठ बजे जाते, तो रात पड़े घर वापस आते। बेगम या तो सैर को निकल जातीं या फिर सिनेमा देखने चली जातीं और अगर कभी घर पर भी होतीं तो सदा मुँह फुलाये बैठी रहतीं; इस पर भी साजिद सदा हँसते रहते। अपने सलूक में जरा भी फ़र्क न आने देते। निगोड़ा जुकाम भी बेग़म को हो जाता तो डाक्टरों के पीछे मारे मारे फिरते।

बतूलन—मैं पूछती हूँ साजिद बुरा न मानते इनकी ग़ैर-हाज़िरी का?

ख़ैरन—यह न होतीं तो मैमूना से दिल बहलाते (**गला भर आता है**) वही बच्ची जिसे अब्बा आँख की पुतली बनाये रखते थे अब.....

[आमना फ़रीद को उठाये हुए प्रवेश करती है]

आमना—ले मैं अभी देती हूँ अपने बेटे को आम। बतूलन! कहाँ हैं वे आम? एक काटकर ज़रा फ़रीद को दे (उसे गले लगाकर झुलाते हुए) मेरे बेटे को सिरौली बड़े पसन्द हैं।

[आमों का नाम सुनकर मैमूना मुड़ती है और धीरे-धीरे कमरे में आती है]

आमना—और देख ख़ैरन, मम्मो को दो फाँकों से ज़्यादा न देना। फोड़े निकल आते हैं इसे। ख़ून ख़राब है। (घृणा से) इसके अब्बा को भी निकल आते थे फोड़े। ध्यान रखा कर इस बात का खाना देते वक़्त।

ख़ैरन—खाया ही कब है खाना बेटी ने। लाके रखा था, पर एक दो कौर मुश्किल से खाये।

आमना—खाना नहीं खाया इसने? मेरे कमरे में भेज दे इसका खाना। नखरे तो देख चुड़ैल के (बतूलन लोबिया छोड़कर रसोईघर में जाने को उठती है) और देख बतूलन फ़रीद को आम देकर मेरे सैंडल को ज़रा ब्रश कर दे। अभी मैटनी देखने जाना है मुझे (मैमूना से) चल मम्मो।

[दोनों जाती हैं]

ख़ैरन—(बतूलन से) बेगम ले गई हैं मम्मो को कि शोर न मचाये आमों को देखकर। हाय मेरे अल्लाह! अपनी औलाद से ऐसी नफ़रत।

आमना—(भीतर से) ख़ैरन बी! यह मम्मो क्या करती रही है

आज ! सुबह बदला था फ़राक इसका, मैला चीकट कर दिया। इसे कभी तमीज़ न आयेगी।

[मम्मो का कान पकड़े आती है। बतूलन रसोईघर में चली जाती है]

—क्या मिट्टी में खेलती रही है दिन भर ? बिलकुल अपने अब्बा पर है। न बदन का होश न कपड़े का (**रुककर**) और देख यह फ़रीद का सूट भी बदल दे।

खैरन—सुबह ही तो बदला था बेगम।

आमना—मैला मालूम होता है, माजिद भी शायद आये वहाँ। मैं नहीं चाहती कि उसके सामने फ़रीद किसी भिखमंगे का लड़का दिखाई दे। तू तैयार कर दे उसे जल्दी। (**मैमूना से**) चल मम्मो।

[उसे ले जाती है।]

खैरन—(लम्बी साँस खींचती है) हे मेरे अल्लाह !

[बतूलन आम लाकर फ़रीद के सामने रखती है]

बतूलन—ले ये आम ! खा ले जल्दी। फिर सिनेमा देखने जाना होगा।

फ़रीद—मैं नहीं खाता।

बतूलन—क्यों भला ? देख तो कितने मीठे हैं आम ! तेरे लिए खरीदे हैं नुमाइश से।

फ़रीद—ऊँ-ऊँ।

बतूलन—आखिर क्यों ?

फ़रीद—शीमा भी खायेगी।

बतूलन—शीमा चुड़ैल (**ख़ैरन से**) ख़ैरन बी, ज़रा देना आवाज़ उसे।

ख़ैरन—(**दूसरे कमरे की चौखट पर रुककर**) शीमा... शीमा...

[**शीमा शरमाती लजाती दाख़िल होती है**]

फ़रीद—शीमो, आ आम खायँ।

आमना—(**भीतर से**) ख़ैरन ! ले आ खाना मम्मो के लिए जल्दी। और देख आम दो फाँकों से ज़्यादा न रखना। कहना तो मानती नहीं, मेरा चुड़ैल। गंदी रहती है। अब रही गंदी तो कुछ भी न दूँगी। माजिद आ जाये अगर...

[**ख़ैरन रसोईघर में जाती है।**]

बतूलन—शीमा तुझे बड़ी अच्छी लगती है न फ़रीद और मम्मो ?

फ़रीद—(**आम खाता हुआ**) वह तो ख़ैरन की बेटी है।

बतूलन—ख़ैरन की बेटी है ! (**हँसती है**) और शीमा ?

फ़रीद—वह अम्मीं की बेटी है (**शीमा को आलिंगन में लेता हुआ**) तू मेरी बहिन है न शीमो। मम्मो से कुट्टी कर लेंगे हम। क्यों है न !

(**ख़ैरन रसोई घर से तश्तरी में खाना लिये भीतर जाती है**)

शीमा—मम्मो से कुट्टी !

(**दोनों क़हक़हा लगाते हैं—सरल, अबोध क़हक़हा**)

ख़ैरन—(**वापस आते हुए धीमी आवाज़ में**) यह बेगम माजिद का ज़िक्र क्या बार-बार किया करती हैं ? माजिद यह कहते हैं, माजिद

यह करते हैं, माजिद यह न कहें, माजिद वह न खयाल करें, बस आठों पहर माजिद के गुण गाया करती हैं !

बतूलन—(**ड्राइंग रूम से सैंडल लाते हुए**) नुसरत से पूछ के देखो उनके गुण, बेचारी आधी भी नहीं रही रो-रो के। अरशद मियाँ...

ख़ैरन—(**लोबिया काटने लगती है**) अरशद मियाँ भी नहीं रोकते !

बतूलन—(**सैंडल लेकर उन्हें ब्रश करते हुए**) वह आप उदास-उदास से रहते हैं। मुझे तो रहम आता है उन्हें देखकर। जैसे उनमें कोई अपना अरमान ही नहीं, बिन पतवार की कश्ती से डोलते रहते हैं। न वह हँसी न .खुशी। घुटे-घुटे। दबे-दबे। नुसरत से कर लेते शादी तो अच्छे रहते।

ख़ैरन—नुसरत से...

बतूलन—इतनी सुन्दर तो वह नहीं ख़ैरन बी, पर गुणों की खान है। मजाल है जो दिल की बात चेहरे पर आने दे। घुट-घुट कर रह गई, पर अरशद मियाँ के सामने मन की गाँठ न खोली। मरती मर जायेगी पर उफ़ न करेगी।

ख़ैरन—नुसरत बहुत अच्छी लड़की है।

बतूलन—जब भी कभी जाती हूँ मुस्कराकर मिलती है। अरशद मियाँ का हाल पूछती है पर उसकी वह दर्द-भरी मुस्कराहट (**दीर्घ निश्वास लेती है**) मालूम होता है जैसे दिल में उतरती जा रही है। मेरे तो कचोके लगते हैं ख़ैरन बी !

ख़ैरन—माजिद प्यार न करते थे नुसरत को ?

बतूलन—माजिद क्या प्यार करते ? दिल तो उनका कहीं और था। बेगम से पैंग बढ़ा रहे थे उन दिनों।

ख़ैरन—तब तो बात भी न करती थीं बेगम। माजिद सौ बार बहाने से आ-आकर बैठते। अपनी इस भाभी के इशारे पर जान कुरबान करने को तैयार रहते। इनकी हर फ़रमाइश को पूरा करने के लिए बेचैन फिरा करते। उनकी आधी तलब तो इन भाभी साहिबा के तोहफ़ों की भेंट हो जाती, पर तब तो भाभी सीधे मुँह बात भी न करती थीं उनसे।

बतूलन—तब देवर को कौन पूछता ! अरशद जो चढ़े हुए थे नज़र में।

ख़ैरन—और क्या ! मैमूना से कहा करतीं—तू तो अरशद चचा की बेटी है। वैसी ही शक्ल-सूरत, वैसी ही आदतें हैं तेरी—और यह कहकर फूली न समातीं।

बतूलन—(व्यंग्य से) और अब फ़रीद माजिद चचा का लड़का बन गया है। उसकी शक्ल माजिद चचा सी है। उसे माजिद चचा की आदतें सिखाई जा रही हैं।

[आमना दाखिल होती है। ब्लाउज़ वही है किन्तु साड़ी बदली हुई है। बाल फिर से बनाये गये हैं। मुख पर पाउडर की हल्की सी तह जमी है और ओंठों पर सुर्ख़ी की ताजी लकीर है।]

आमना—कर दिया ब्रश सैंडलों को ?

बतूलन—जी बेगम। लीजिए।

आमना—(सैंडल पहनते हुए) और बतूल, इस फ़रीद को

जल्दी तैयार कर इसके हाथ-मुँह धुलाकर सूट बदल दे (**बतूलन उठती है**) नहीं अब सूट रहने दे। बस इसके हाथ-मुँह धुला दे।

[**बतूलन फ़रोद को रसोई में ले जाती है।**]

—(**उसी को सम्बोधित करके**) और देख तू मेरे साथ चल। यह मचल गया तो सारे खेल का मज़ा किरकिरा हो जायगा और ख़ैरन बी तुम मैमूना का ख़याल रखना।

ख़ैरन—इसे भी साथ ले जाती बेगम !

आमना—क्या अभी से बिगाड़ दूँ ! इसके अब्बा ने पहले ही इसकी आदतें क्या कम बिगाड़ रखी हैं !

ख़ैरन—(**लोबिया काटते हुए**) आप बात-बात में नाहक़ उनका नाम...

आमना—ख़ैरन... !

ख़ैरन—मैं तो चुप रहने की बहुत कोशिश करती हूँ; लेकिन जब हर बात में उनका नाम...

आमना—ख़ैरन—!

ख़ैरन—मुझसे यह सब कुछ नहीं सुना जाता। जो मेरी गोद में पलकर जवान हुआ, जिसे बचपन में अपना दूध तक पिलाया, जो इतना नेक और...

आमना—ख़ै—रन !

ख़ैरन—और फिर उसकी यह बच्ची। रेगिस्तान में भटकनेवाली नन्हीं सी जान की तरह इस घर में डोलती फिरती.....

[बतूलन फ़रीद का हाथ मुँह धुलाकर ले आती है। तौलिये से उसके हाथ मुँह पोंछकर उसके बालों को सँवारती है]

आमना—ख़ैरन ! मैं देखती हूँ तू मैमूना की आदतें बिगाड़ रही है। मैंने तेरे बुढ़ापे का ख़याल करके तुझे छोड़ना मुनासिब नहीं समझा, लेकिन तुझे दूसरा घर देखना पड़ेगा। (बतूलन से) फ़रीद को ले जाकर मोटर में बिठा। मैं अभी आई।

बतूलन—(तौलिया खूँटी पर टाँगते हुए) चलो फरीद मियाँ

[दोनों जाते हैं]

आमना—पानी में रहकर मगर से बैर अच्छा नहीं ख़ैरन बी। अपना भला-बुरा सोच ले। मैमूना तुझे ही प्यारी नहीं, मेरी भी बच्ची है।

[आमना तेज़ तेज़ चली जाती है]

ख़ैरन—(दीर्घ निश्वास लेकर) आह ! अगर वह तुम्हारी बच्ची होती ! वह अपने मरहूम* अब्बा की बच्ची है और उसकी मौत के बाद मेरी बच्ची है।

[धीरे-धीरे डरी डरी सी मैमूना कमरे से बाहर निकलती है]

ख़ैरन—(आगे बढ़कर उसे गले से लगाते हुए) आ मेरी यतीम, बेआसरा बच्ची। अपनी इस बूढ़ी माँ की तरह तू भी बेआसरा और बेबस है।

[प्यार से उसे छाती से लगाती है, उसके बालों पर हाथ फेरती है, बाहर से मोटर के स्टार्ट होने की आवाज़ आती है]

—तूने आम खाया क्या ? (उसे छाती से भींचती है) आ तो मैं तुझे देती हूँ आम !

---

* मरहूम = दिवंगत

मैमूना—नहीं, मैं नहीं खाती आम।

ख़ैरन—क्यों ?

मैमूना—आम खाने से फोड़े निकलते हैं।

ख़ैरन—(उसे फिर छाती से लगाती हुई) मेरी बच्ची को तो आम खाने से फोड़े निकलें और उस पाजी को उनसे आराम आये, जिसका जिस्म फोड़ों से कोढ़ियों की तरह अटा रहता है। ले तो मैं तुझे लाकर देती हूँ आम। देखूँ तो किस तरह निकलते हैं फोड़े।

[रसोई घर से आम लाकर उसे देती है]

—ले खा तो मेरी बेटी।

मैमूना—नहीं।

ख़ैरन—आख़िर क्यों ?

मैमूना—अम्मी मारेंगी।

ख़ैरन—कौन तेरी अम्मी ! तेरी अम्मी तो मैं हूँ। ले खा।

[फाँक उसे देती है। अरशद आता है]

अरशद—(खिन्न, म्लान, विषादमयी हँसी के साथ) अपने इस बेटे को भी तो आम खिलाओ ख़ैरन बी !

ख़ैरन—ओह ! अरशद मियाँ ! इतनी जल्दी वापस आ गये आप ?

[मैमूना डरकर भीतर कमरे में चली जाती है]

ख़ैरन—लो भाग गई मैमूना तुम्हें देखकर (ज़रा सा हँसते हुए) सुबह से बेटी ने कुछ खाया-पिया न था। बेगम आम लाई थीं, मैंने सोचा...

अरशद—(उदास हँसी के साथ) तुम्हारे इस बेटे ने भी तो सुबह से कुछ खाया-पिया नहीं।

ख़ैरन—क्या कहते हो अरशद मियाँ! तुम तो दावत में गये हुए थे।

अरशद—दावत! (हँसता है) वह तो आमना की थी। मैं तो यों ही तुफ़ैलियों में चला गया था।

ख़ैरन—कैसी बातें कर रहे हो?

अरशद—तुम न समझोगी।

ख़ैरन—बेगम तो कहती थीं आप सिनेमा में उनकी राह देख रहे हैं। वह तो अभी गई हैं।

अरशद—मैंने उसकी कार को जाते हुए देखा था। लेकिन वहाँ साजिद होगा। मैंने उसे फ़ोन कर दिया था।

ख़ैरन—मालिक! आप क्या कह रहे हैं?

अरशद—साजिद आमना से मुहब्बत करता है और वह भी अब उससे नफ़रत नहीं करती।

ख़ैरन—सरकार! आप और बेगम में भी तो...

अरशद—मुहब्बत थी, यही कहना चाहती हो न तुम। लेकिन इस मुहब्बत के दरम्यान साजिद आ गया। मैं जवानी की अपनी उसी सीधी-सादी, पागल मुहब्बत के फ़रेब में हवाईमहल बनाता रहा। मैं आमना को हमेशा उसके पहले रूप में देखता रहा। मुझे क्या मालूम—साजिद को अपनी मुहब्बत न देनेवाली आमना, उसकी दौलत को अपना दिल दे बैठी है। साजिद को उसने छोड़ दिया, उसकी दौलत को न छोड़

सकी ! (जैसे अपने आप) वह अरशद को—ग़रीब बेपरवाह और आज़ाद अरशद को—सोसाइटी के अदब-आदाब सिखाकर पालतू कुत्ते की तरह साथ साथ लिये फिरना चाहती है (हँसता है) वह उसे चूम लेगी, उसे अपनी बाँहों में भींच लेगी, लेकिन उसकी नज़रों में उस की वक़अ़त पालतू कुत्ते से ज़्यादह न होगी।

ख़ैरन—(रुँधे हुए गले से) सरकार !

अरशद—पहले अगर वह मुझसे शादी करती तो मेरी इस बेपरवाही से नफ़रत न करती, वह इससे प्यार करती। मेरी हस्ती में अपनी हस्ती मिला देती। लेकिन अब (लम्बी साँस लेता है) उसने अपनी अलग हस्ती बना ली है—धन-दौलत के बनावटी और बेजान अदब-आदाब की लहरों पर तैरनेवाली हस्ती ! मेरी बेपरवाही से अब वह उकता जाती है। वह मेरा सुधार करना चाहती है। पालतू कुत्ते की तरह मुझे साथ साथ लिये फिरना चाहती है। उसे शाइस्ता*, मुहज़्ज़ब†, अमीर माजिद मुबारिक रहे। वह फ़रीद को शौक से माजिद चचा जैसा बनाये। अरशद अपनी अलग दुनिया बसा लेगा।

ख़ैरन—लेकिन मैमूना (गला भर आता है) मेरी ग़रीब, मासूम‡ बच्ची ! वह तो घुटकर मर जाएगी इस फ़ज़ा में मालिक।

अरशद—मैमूना...

ख़ैरन—मैं तो अभी तुम से यह कह रही थी कि मुझसे यह सब नहीं देखा जाता। मेरी ग़रीब बच्ची इस घर में घुटी जा रही है।

अरशद—मैं खुद घुटा जा रहा हूँ।

ख़ैरन—मैं इसका यह हाल नहीं देख सकती। मुझे छुट्टी दो।

---

* शाइस्ता = संस्कृत। † मुहज़्ज़ब = सभ्य। ‡ मासूम = भोली।

अरशद—छुट्टी ! (हँसता है) मैं खुद छुट्टी ले रहा हूँ ।

खैरन—अम्मा इसे अपने पास फटकने नहीं देती । तुम्हारे पास वह आती नहीं । उदास उदास, खोई खोई सी फिरती रहती है । कभी इस खिड़की में, कभी उस झरोखे में खड़ी न जाने क्या क्या सोचती रहती है । इन दो बरसों में आधी भी तो नहीं रही ।

[मैमूना दूसरे कमरे से झाँकती है, फिर कन्नी काटकर बाहर निकल जाना चाहती है

—यह देखो, फिर कन्नी काटकर निकल चली ।

अरशद—(उसे पकड़कर अतीव स्नेह से) मम्मो, इधर तो आ बेटी । तू मुझसे इतना डरती क्यों है ? (उसे गोद में लेकर) तू मेरे सामने से चोरी-चोरी क्यों निकल जाती है ? मुझसे कन्नी क्यों कतराती है ? (उसे चूमता है) मैं तेरा अब्बा हूँ (उसके बालों पर हाथ फेरता हुआ उसे गले लगाता है) बता तू किस की बेटी है मेरी मम्मो ?

मैमूना—(चुप)

अरशद—(उसे प्यार करता हुआ) किसकी बेटी है मेरी अच्छी मम्मो ?

मैमूना—मैं खैरन बी की बेटी हूँ ।

अरशद—(उसे आलिंगन में भींचता हुआ) तू मेरी बेटी है । साजिद की नहीं, खैरन की नहीं, आमना की भी नहीं । तू अपने अब्बी की बेटी है (दीर्घ निश्वास लेता है) अपने अब्बी के बेपरवाह आज़ाद दिनों की बेटी ! अब तू भी उसकी तरह घुट घुटकर रह गई है । लेकिन मैं अपनी बेटी को ज़रा भी तकलीफ़ न होने दूँगा । (उठ खड़ा होता है

और मैमूना को अपनी बाँहों में उठाकर हृदय से लगा लेता है) अपने अब्बी की बेटी है न मेरी अच्छी मम्मो ।

[मैमूना पहले झिझकती है फिर अपने नन्हें नन्हें हाथों को अरशद की गर्दन से लिपटा देती है]

मैमूना—अब्बी !

(पर्दा तत्काल गिर जाता है)

चुम्बक

पात्र

गोपा, सरिता, बाबा, दूलो, इक्केवाला, गौतम

स्थान—

मध्य पंजाब का एक गांव

समय—

दिन का तीसरा पहर

[सेशन जज की पदवी से रिटायर होकर गोपा के बाबा ने अपने गाँव 'वनीके' के बाहर, अपने आमों के बाग में सड़क के किनारे एक छोटा सा बंगला बना लिया है। जीवन का सूर्य अस्त होने को है और वह चाहता है कि मीठी मीठी बयार की थपकियों से हलके फुलके बादलों की चादर ओढ़ कर सो जाये! कोलाहल गोपा के बाबा को पसन्द नहीं। रिटायर होने के बाद वे एक बार भी नगर नहीं गए— गाँव की सड़क पर इक्के चलते हैं, उससे परे जरनैली सड़क पर मोटरें बसें और तनिक और आगे अटारी स्टेशन पर रेलगाड़ियां; और जरूरत का सब सामान वहीं घर-बैठे प्राप्त हो जाता है। किन्तु गोपा, जो बी० ए० की परीक्षा देने के बाद अपने अवकाश के दिन बिताने (कम से कम अपनी सहेलियों से उसने यही कहा है) अपने बाबा के पास वनीके चली आई है, कुछ ही दिनों में घबरा उठी है।

पर्दा उठने पर हम गोपा और उसके बाबा को ड्राइंग रूम में बैठे हुए देखते हैं। यह ड्राइंग रूम नागरिक और ग्रामीण रुचियों के मिलान का एक सुन्दर चित्र उपस्थित करता है। इसमें कौच भी हैं, मेज-कुर्सियां भी, लेकिन साथ ही बायीं दीवार के साथ एक तख्त भी बिछा है, जिस पर गावतकिया लगा हुआ है।

चरवाहे

सामने की दीवार में खिड़की, अंगीठी और एक दरवाज़ा है—खिड़की दायीं ओर को है और इसमें से आमों के तने और घनी छायाएँ छोटे छोटे पौधों की हरियाली से मिल कर आँखों को एक विचित्र शीतलता प्रदान करती हैं। अंगीठी के ऊपर बहुत सा सामान पड़ा है, जिसमें मिट्टी के खिलौने, चीनी के फूलदान और दूसरी चीज़ों के अतिरिक्त तम्बाकू का एक बर्तन और सिगरेट की एक डिबिया भी पड़ी है। रहा दरवाज़ा, सो वह एक दूसरे कमरे को जाता है, जो इस समय गोपा के सोने और पढ़ने के कमरे का काम देता है।

दायीं (अभिनेताओं के) ओर की दीवार के परले कोने में एक दरवाज़ा है जो बाहर आँगन को जाता है।

बायीं (अभिनेताओं के) ओर की दीवार में एक बड़ी खिड़की और एक दरवाज़ा है। खिड़की में से अटारी से (बनीके के सामने से हो कर) चौगावां को जाने वाली सड़क दिखाई देती है और दरवाज़ा बाहर को खुलता है।

पर्दा उठते समय बाबा सामने दीवार की खिड़की के पास मोंढे पर बैठे मज़े से हुक्का पी रहे हैं। गोपा तख्त पर पेट के बल लेटी हुई पुस्तक पढ़ रही है। पांव उसके ऊपर को उठे हुए हैं और वह उन्हें धीरे धीरे हिला रही है।

पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद तक बाबा के हुक्के की गुड़गुड़ाहट सुनाई देती रहती है। सामने खिड़की में आमों की छायाएँ धीरे धीरे गहरी होती जाती हैं, प्रकाश की किरणें मन्द पड़ने लगती हैं और पृष्ठभूमि में वृक्षों के 'शां...शां' का गहर-गम्भीर शब्द सुनाई देता है। बाबा चौंक कर उठते हैं।]

बाबा—(घबराई हुई आवाज़ में, बायीं ओर की खिड़की में देखते हुए) गोपा...गोपा...

गोपा—(उसी प्रकार लेटे हुए पुस्तक पर से दृष्टि हटा कर) क्या बात है बाबा ?

बाबा—(चिढ़ कर) क्या बात है बाबा ? क्या बात है बाबा ? देखती नहीं हो, सामने आकाश के तेवर बदल गए हैं; धूल से वायु-मंडल सन गया है। पंछी घोंसले छोड़ कर आतुर घूम रहे हैं।—

(पृष्ठ-भूमि में वृक्षों की 'शां शां' की ध्वनि और भी ज़ोर पकड़ती है। दरवाजों और खिड़कियों के किवाड़ खड़खड़ाते हैं और कमरे में हल्की सी धूल छा जाती है।)

—बाग़ के वृक्ष चीख उठे हैं, किवाड़ खड़खड़ाने लगे हैं, (नक़ल उतारते हुए) क्या बात है बाबा ? काली आँधी आ रही है, काली !—

(गोपा हाथ में पुस्तक लिये उठ कर दरवाज़ों और खिड़कियों के किवाड़ लगा देती है।)

...यह रौशनदान भी बन्द कर दो !

(गोपा बड़बड़ाती हुई रौशनदान की रस्सी खोल देती है और मुड़ कर कमरे में इधर उधर देखती है।)

गोपा—कमरे में धूल ही धूल भर गई। मेरी तो सांस जैसे घुटी जा रही है।

(खिड़की की ओर, उसे खोलने के विचार से, बढ़ती है।)

बाबा—(उसे रोक कर) कुछ क्षण चुपचाप बैठ जाओ। इस पुस्तक को छोड़ दो। आंधी का कोप शांत हो लेने दो, फिर खिड़की

छोड़ दरवाज़ा खोल लेना। नहीं तो पन्द्रह दिन लगातार झाड़ने-बुहारने से भी कमरा साफ़ न होगा।

(बाहर आंधी का वेग बढ़ जाता है।)

गोपा—(कौच में धँसती हुई) यह कम्बख्त कैसा मौसिम है? सारा सारा दिन आग बरसती है और धूल छाने लगती है तो सूरज भी चाँद की पीली सी टिकिया दिखाई देता है—सुबह धूल, शाम धूल—नाक और कंठ सूख सूख जाते हैं। मैं तो ऊब गई इन आँधियों और झक्कड़ों से।

(खिड़की के शीशे पर पानी के कुछ छींटे पड़ते हैं।)

बाबा—बस अब पावस आ गया है। धरती की यह मस्ती उतर जाएगी।

गोपा—(उठ कर खिड़की की ओर जाते हुए) खाक आ गया है पावस। इन चार छींटों से क्या होता है?

बाबा—नहीं, यह बरस के जाएगा, (प्रसन्नता से) और यह विशाल मरुस्थल धान, कमाद और मकई की हरियाली से लहलहा उठेगा।

गोपा—(सहसा चौंक कर) बाबा...बाबा...

बाबा—(उसकी ओर जाते हुए) क्या बात है?

गोपा—(हँसती है) देखिए ना, (फिर हँसती है) देखिए ना इस इक्के को—

(बाबा उसके पास जा खड़े होते हैं)

—(करुणा से) किसी ग़रीब के छप्पर की भाँति इसकी छत उड़

गई है, और यह घोड़ा—(हँसती है) कम्बख्त किसी ज़िद्दी अंधे की तरह आंधी-पानी को चीरता हुआ चला आ रहा है। (सहसा गम्भीर हो कर) अरे इसमें तो कोई लड़की है !

बाबा—(उसके कंधे के ऊपर से देखते हुए) निपट अकेली ! न जाने किस मुसीबत की मारी बेचारी इस तूफ़ान में अकेली घर से निकल पड़ी है...दरवाज़ा खोल दो बेटा, इसकी आकुल निगाहें आश्रय खोज रही हैं।

गोपा—(दरवाज़ा खोल कर उसे पुकारती है) इधर आ जाओ बहिन, इधर चली आओ !

(भीग जाने के कारण शरीर से चिमटी हुई साड़ी, भीगे बिखरे बाल, एक हाथ में बैग थामे सरिता प्रवेश करती है।)

सरिता—ओह ! (सुख की लम्बी साँस लेती है) बड़ा आभार मानती हूँ आपका, (तनिक कांपती है और हँसती है) मुझे तो सर्दी लगने लगी है।

बाबा—गोपा, तुम इन्हें बिठाओ, मैं इतने में दूलो से चाय बनाने को कहता हूँ। (सरिता से) बैठो बेटी, इसे अपना ही घर समझो !

(आँगन के दरवाज़े से चले जाते हैं।)

गोपा—(सरिता से) आइए, चली आइए। यह कपड़े बदल डालिए, चीकट हो रहे हैं।

सरिता—(गोपा के साथ भीतर कमरे को जाते हुए) कुछ वर्षा हो रही है। लगता है जैसे आकाश के किसी अनजाने बैरिज के बांध टूट गए हैं। मैं तो पलक झपकते शराबोर हो गई।

(कमरे में चली जाती है। गोपा बाहर रहती है।)

गोपा—(नौकर को आवाज़ देती है) दूलो, दूलो !

दूलो—(बाहर से) जी बीबी जी !

गोपा—ज़रा तौलिया लाना जल्दी। (सरिता से) कपड़े आप कौन से पहनेंगी—साड़ी लाऊं या शलवार ? जो कहिए, वही लाऊं।

सरिता—(भीतर से) धन्यवाद ! कपड़े मेरे बैग में हैं।

गोपा—इस आँधी तूफ़ान में आप कहाँ जा रही हैं ?

सरिता—प्रीतनगर !

गोपा—(आश्चर्य से) प्रीतनगर ? लेकिन वह तो यहाँ से भी सात मील आगे है।

सरिता—अब तो केवल सात मील रह गया है, मैं तो मिन्ट-गुमरी से आई हूँ।

गोपा—(और भी चौंक कर) मिन्टगुमरी से, निपट अकेले ?

सरिता—अकेलेपन से मुझे डर नहीं लगता।

गोपा—और इस निर्जन सड़क पर आप अकेली सफ़र कर रही हैं ?

सरिता—(हँस कर) मैंने इससे कहीं अधिक निर्जन सड़कों पर अकेले सफ़र किया है।

(इक्केवाला दरवाज़ा खटखटाता है।)

इक्केवाला—बाबाजी, बाबाजी.....

(गोपा जाकर दरवाज़ा खोलती है, कल्लू, इक्केवाला, चौखट में आ जाता है।)

गोपा—अरे कल्लू तुम हो, तुम्हारे इक्के पर आई हैं ये ? कहो क्या बात है ?

इक्केवाला—बाबाजी.. (सिर कुरेदने लगता है)...बाबाजी कहाँ हैं ?

गोपा—क्या बात है ?

इक्केवाला—जी कोई बीड़ी मिल जाती तो (फिर सिर कुरेदने लगता है)

गोपा—बीड़ी ? (हँसती है) बीड़ी तो यहाँ कोई नहीं पीता।

इक्केवाला—तो फिर सिगरेट ही मिल जाय ! मेरी जेब में तो (जेब में हाथ डाल कर बाहर निकालते हुए) सब कुछ पानी हो गया है।

गोपा—सिगरेट.....मैं देखती हूँ.....अभी परसों एक मेहमान आए थे, डिबिया यहीं भूल गए हैं। और तो कोई पीता नहीं यहाँ।

(अंगीठी पर हूँढ कर सिगरेट की डिबिया लाती है और एक सिगरेट निकाल कर इक्केवाले को देती है।)

मोपा—यह लो। बाबा तो हमारे हुक्का पीते हैं। सिगरेट उन्हें अच्छा नहीं लगता।

इक्केवाला—जी दियासिलाई...

गोपा—(नौकर को आवाज़ देती है) दूलो...दूलो...

दूलो—(आँगन के दरवाजे में से) जी मैं यह रहा। यह लीजिए तौलिया।

गोपा—(उसकी ओर जाते हुए) अब लाया है तौलिया कम्बख्त ! ला, दे ! और जा भाग कर दियासिलाई की डिबिया ले आ। (जाकर

तौलिया कमरे के अन्दर फेंकती है) यह तौलिया ले लो बहिन ! बदन पोंछ डालो ! (फिर इक्केवाले के पास जा कर) अभी आती है दिया-सिलाई । तुम जरा अन्दर आ जाओ । इस तरह बौछार आ रही है । और दरवाज़ा बन्द कर दो—

(इक्केवाला अन्दर आकर दरवाज़ा बन्द कर देता है ।)

—तुम कैसे चल पड़े इस समय ? रात कहाँ रहोगे ?

इक्के वाला—जी मैंने तो लाख इनकार किया था, लेकिन यह मानती ही न थीं । कहने लगीं—"मैं वापस नहीं जा सकती । सवा की जगह दो रुपये दूंगी, जैसे भी हो ले चल ।" मैंने कहा, "बीबीजी, दस मील है ।" कहने लगीं, "कोई परवा नहीं, तू ले चल ! मैं इसी गाड़ी मिएटगुमरी से आई हूँ । वापस अब नहीं जा सकती ।" मैंने सोचा—चलो रात प्रीतनगर ही रह लेंगे । सवारियाँ तो सुबह उधर से मिल ही जाती हैं । फिर अटारी के पहलवान ने भी कहा, "जाओ, छोड़ आओ जाकर ! ये कुछ और इनाम दे देंगी ।" पहलवान की बात, आप जानती हैं, हम कैसे टाल सकते हैं ? अड्डे का मालिक जो ठहरा ।

गोपा—पर इस समय इन्हें अकेले आने का साहस कैसे हुआ !

इक्के वाला—जो इनके साहस की न पूछिये । एक शाम रेनाला से ओकाड़ा तक ग्यारह मील अकेली तांगे पर चली गई थीं ।

गोपा—ग्यारह मील !

इक्के वाला—जी, बता रही थीं कि रेनाला किसी काम से गई थीं । वहां से चलते समय देर हो गई । रेल-गाड़ी का समय निकल

गया था और लारी कोई मिली नहीं। इन्हें सुबह स्कूल पहुँचना था। बस तांगा लेकर चल पड़ीं।

दूलो—(आंगन के दरवाजे से दियासलाई फेंकता हुआ) यह दियासलाई रही बीबीजी !

(गोपा दियासलाई की डिबिया उठा कर इक्के वाले को देती है और वह सिगरेट सुलगाता है।)

इक्के वाला—(एक दो कश लगा कर अपनी बात जारी रखते हुए) रास्ते में एक लारी मिली जो सामान से भरी हुई थी। बेधड़क तांगे से उतर कर इन्होंने लारी रोक ली। लारी में सामान लदा था, और तीन आदमी बैठे थे। ये बेझिझक लारी में सवार हो गईं। न इन्हें उस निर्जन से भय आया, न उस सामान से भरी हुई लारी में तीन असभ्य पुरुषों के साथ अकेले सफ़र करने से।—शायद वहां के डिप्टी कमिशनर इनके रिश्तेदार हैं।

(ज़ोर से हवा का एक झोंका आता है और किवाड़ खुल जाते हैं)

गोपा—कल्लू, तुम उधर आंगन के बरामदे में चले जाओ। यहां तो बौछार आ रही है।

इक्केवाला—(जाते जाते मुड़कर) जी, एक सिगरेट और मिल जाता। भगवान आपका भला करे। (सिर कुरेदता है) आपके बाबा तो हुक्का पीते हैं।

गोपा—(हँसते हुए) ले !

(इक्के वाला चला जाता है। गोपा दरवाज़ा बन्द करके चटखनी लगा देती है। सरिता कपड़े बदल कर बाहर आती है।)

सरिता—(हँसते हुए) यह शलवार-कमीज़ मैं रात को पहनती

हूँ । ज्यादा कपड़े साथ लाई नहीं और यह वर्षा कम्बख्त...(हँसती है) एक साड़ी तो मैंने वहाँ पहनने के लिए रख छोड़ी है ।

गोपा—साड़ी आप मुझसे ले लेतीं।

सरिता—धन्यवाद ! काम तो चल गया, नाइटसूट.....

गोपा—कौन जानता है नाइट और डे सूट देहात में ! (कौच की ओर संकेत करके) बैठिये ! मैं चाय के लिये कह आऊं ।

(आंगन की ओर जाती है । सरिता कौच पर बैठकर तिपाई पर बांहें फैला कर उनमें सिर रख देती है ।)

गोपा—(नौकर को आवाज़ देते हुए) जल्दी चाय लाओ दूलो । (वापस आते हुए, सरिता को मेज पर बांहें फैलाये हुए देख कर) क्यों, क्या बात है ?

सरिता—कुछ नहीं, थक गई हूँ । नींद सी आ रही है । (उठ कर अंगड़ाई लेते हुए) यह वर्षा अभी कम नहीं हुई ।

गोपा—मूसलाधार पड़ रही है ।

सरिता—और मुझे आज वहाँ अवश्य पहुँचना है ।

गोपा—(तनिक हँस कर) अभी इक्के वाला कह रहा था कि मिन्टगुमरी के डिप्टी कमिशनर आपके रिश्तेदार हैं ।

सरिता—(हँस कर) जब कहीं निर्जन में मुझे अकेले सफ़र करना पड़ता है तो वहाँ के अफ़सर मेरे रिश्तेदार बन जाया करते हैं ।

(दोनों ठहाका मार कर हँसती हैं । नौकर चाय की ट्रे लाता है ।)

गोपा—इधर रख दे तिपाई पर। (सरिता से) आपके साहस की दाद देती हूँ भई ! मैं होती तो अटारी ही से मुड़ जाती।

(नौकर तिपाई पर चाय की ट्रे रख देता है।)

सरिता—एक बार चल कर मुड़ना मैंने नहीं सीखा।

गोपा—(प्यालियों में चाय उँडेलते हुए) वहाँ आप सूचना ही भिजवा देतीं। कोई आपको लेने अटारी आ जाता।

सरिता—मैं बिना सूचित किए वहाँ पहुँचना चाहती हूँ।

गोपा—चीनी ?

सरिता—डेढ़ चम्मच !

गोपा—(चीनी डालते हुए) भई तुम्हा...आपकी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।

सरिता—(उठ कर कौच का एक चक्कर लगाते हुए) मैं उन्हें surprise visit देना चाहती हूँ। उन्हें तो पता भी नहीं। मैं अचानक जा पहुँचूंगी तो चकित रह जायँगे।

गोपा—तुम.....क्षमा कीजिये, मैं भूल जाती हूँ 'आप' कहना।

सरिता—(हँसते हुए) 'आप' की यहाँ कोई जरूरत नहीं।

(दोनों हँसती हैं)

गोपा—(प्याली को उसकी ओर सरकाते हुए) तुम किनसे मिलने जा रही हो ?

सरिता—क्या करोगी यह पूछ कर ?

गोपा—क्या वहाँ तुम्हारे भाई हैं, कोई सगे सम्बन्धी हैं या तुम्हारे.....

सरिता—(फिर कौच पर बैठते हुए चाय का कप हाथ में लेकर) नहीं नहीं, इनमें से कोई भी नहीं।

गोपा—फिर

सरिता—(चुस्की लेते हुए) तुम्हें यह बात कुछ विचित्र मालूम होगी।

(चाय पीती है, किन्तु चीनी अभी तक घुली नहीं—इसलिए फिर रख देती है।)

गोपा (उत्सुकता से) फिर भी.....फिर भी...

सरिता—(चम्मच से चीनी हिलाते हुए) वहाँ एक कवि हैं, मुझे उनसे प्रेम है।

गोपा—(चौंक कर) कवि.....प्रेम...

(सरिता प्याली हाथ में लिये हुए उठ कर कमरे का एक चक्कर लगाती है। फिर आकर तिपाई पर कुहनियाँ टेक कर चाय पीती है।)

सरिता—हाँ, मुझे उनसे प्रेम है—

(प्याली ख़त्म करके मेज पर रख देती है और पूरी अंगड़ाई लेती है।)

—यह कम्बख़्त इक्के की सवारी.....मेरा तो अङ्ग-अङ्ग दुखने लगा है। कल रात जागती रही हूँ।

गोपा—क्यों ?

सरिता—नींद नहीं आई एक्साइटमेंट (excitement) के मारे ! और फिर लम्बा सफ़र—आँखें बन्द सी हुई जा रही हैं !

गोपा—(दूसरी प्याली बनाते हुए) एक कप और पियो, तबीयत खिल उठेगी..... तो तुम्हें उनसे प्रेम है ?

सरिता—या यों कह लो कि उन्हें मुझसे प्रेम है। किन्तु आज मेरे वहाँ पहुँचने की उन्हें कल्पना तक न होगी। एक पत्र में उन्होंने लिखा था.....कहीं दो-चार दिन के लिए आ जाओ तो.....

गोपा—और तुम उठ भागीं।

सरिता—उन्हें पता भी नहीं।

गोपा—लेकिन...

सरिता—उन्होंने छुट्टियों में आने को लिखा था। न जाने उनके पत्रों को पढ़ कर मुझे क्या हो जाता है ? (प्याली हाथ में लिये लिये ही, जैसे किसी दूसरी दुनिया में पहुँच जाती है) वे बहुत दुखी और उदास रहते हैं। अभी कल ही उनका पत्र मिला था (रुँधे हुए स्वर में) 'तुम हाल पूछती हो ?' उन्होंने लिखा, 'बस जीवन का चक्कर चल रहा है। घूमे जा रहा है। मेरी बेकली या उदासी के लिये यह रुकेगा नहीं। लेकिन सरिता, यह अजीब बात है कि मैं कभी कभी उसे एकदम निश्चल पाता हूँ—ठीक उसी प्रकार जैसे यह विशाल धरती घूम रही है और हमें पता भी नहीं चलता। फिर कभी कभी लगता है, जैसे जीवन एक अथाह सागर है—ठहरा और रुका हुआ—और मेरी विवश घड़ियाँ असहाय इसमें हाथ पैर मार रही हैं। (जल्दी जल्दी चाय के दो घूंट भरती है) सोचती हूँ—जब मैं अचानक वहाँ जा पहुँचूँगी और उन्हें पता चलेगा कि मैं मिन्टगुमरी से इतनी दूर—नदी नाले, वन-वीराने पार करती हुई, आँधी और पानी में दस मील का लम्बा, ऊबड़-खाबड़ मार्ग केवल एक इक्के द्वारा पार करके आई हूँ तो.....तो.....

(उल्लास से कमरे का एक चक्कर लगाती है, फिर सहसा रुक कर और कौच की पीठ पर कुहनियाँ टेक कर)

—उनकी निराश और उदास आँखों में आश्चर्य भरे उल्लास के डोरे दौड़ जाएँगे।

(प्याली खाली करके मेज पर रख देती है)

—(अँगड़ाई लेकर) ओह! यदि यह कम्बख्त वर्षा कहीं थम जाए!

गोपा—किन्तु मार्ग तो अब इक्के के बस का न रहा होगा। चौगावां से आगे तीन मील बिल्कुल कच्चे हैं।

सरिता—पानी थम जाए तो मुझे कोई नहीं रोक सकता। इक्का चौगावां ही में छोड़ कर मैं इक्केवाले के साथ तीन मील पैदल चली जाऊंगी, किन्तु पहुँचूंगी मैं आज अवश्य। (जैसे अपने आप से) उनकी आकुल और उदास घाड़ियां वेदना के शीत से निष्प्राण हैं, क्या मैं अपने प्रेम की उष्णता से उनमें प्राण न भरूँगी? अकेलेपन का बोझ उनके हृदय को पीसे जा रहा है। क्या मैं न जाऊंगी उनका बोझ हलका करने, उनके दुख को बटाने?

गोपा—(हँस कर) तुम रोमेंटिक (romantic) हो!

सरिता—यही एक बार उन्होंने कहा था।

गोपा—आप दोनों पहले पहल कब मिले?

सरिता—कभी नहीं...मेरा मतलब है कि यही बात उन्होंने एक बार लिखी थी, नहीं वे तो मुझे पहचानते तक नहीं। हमारा परिचय केवल पत्रों तक ही सीमित है।

गोपा—(और भी चकित होकर) पहचानते तक नहीं, तो फिर तुम...

सरिता—मैंने उन्हें देखा है। एक बार लाहौर की एक सभा में उनकी कविता सुनी थी—कितना अच्छा गाते हैं वे। कितनी वेदना है उनके करुण मधुर स्वर में। वह कविता उन्होंने अपनी स्वर्गीया पत्नी को सम्बोधित करके लिखी थी। (**घूमते घूमते दायीं ओर की खिड़की में जा खड़ी होती है और क्षण भर बरसते हुए बादलों को चुपचाप देखती है फिर मुड़ कर**) मैं उस समय बी० ए० में पढ़ती थी। कई दिनों तक मेरे कानों में उनका दर्द-भरा स्वर, उनकी पीड़ामयी पुकार गूँजती रही। उस कविता का एक एक शब्द मेरे मस्तिष्क में चक्कर लगाता रहा। (**कौच के पास आ जाती है**) फिर एक दिन मैंने उन्हें माल रोड पर देखा। (**सामने, जैसे किसी दूसरी दुनिया में, देखते हुए**) बाल बिखरे हुए थे, माथे पर पसीने की बूंदें चमक रही थीं, और धूप के ताप से बेखबर, सिर झुकाए, शिथिल, थकित, अपने विचारों में निमग्न, वे फुटपाथ के किनारे किनारे चले आ रहे थे—न जाने उनकी कल्पना उस समय अभेद्य प्राचीरों को पार करके कहाँ से कहाँ जा पहुँची थी! (**जैसे इस दुनिया में वापस लौट आती है**) उन्हें अपनी संगिनी से अथाह प्यार था। उसकी मृत्यु ने उनके हृदय को एक असीम सूनेपन से भर दिया है।

गोपा—(**जैसे सब कुछ जान गई हो**) और फिर तुमने उन्हें पत्र लिखा।

सरिता—(**धीरे धीरे कमरे में टहलते हुए**) नहीं! इसके बाद तो मैंने बी० टी० की परीक्षा दी। उनको और भी कविताएँ छपीं। वे सब मेरी डायरी में लिखी हुई हैं। (**अचानक रुककर**) तुमने शायद उन्हें नहीं पढ़ा—कितनी करुणा, कितना विषाद, कितनी पीड़ामयी तरलता है उनकी एक एक पंक्ति में—मैं और असीमा पढ़ते पढ़ते रो पड़ती

थीं—पुलक और आह्लाद भरे बीते दिनों की सूनी समाधि पर उनका हृदय लोहू बन बन कर बहता है—'प्रेम का कैसा अदम्य उफान छिपा हुआ है इस व्यक्ति के हृदय में'—हम सोचा करती थीं। और असीमा तो.....

गोपा—बहिन है तुम्हारी असीमा ?

सरिता—नहीं, मेरी सहेली है। बचपन से हम दोनों साथ पढ़ती आई हैं। वह सारा सारा दिन पागलों की भाँति गाया करती थी उन कविताओं को। (धीमे स्वर में धीरे धीरे) बी० टी० करने के बाद मैं हेडमिस्ट्रेस हो कर ओकाड़ा चली गई और असीमा अपनी माँ के पास मरी जा पहुँची। उसकी माँ वहाँ सेकेंड मिस्ट्रेस थी। तब ओकाड़े के उष्ण और दम घोंटने वाले एकान्त में, मैं तुम्हें बता नहीं सकती, वे कविताएं मुझे कितना सुख, कितनी शान्ति और कितनी ठंडक पहुँचाती थीं। उन्हीं दिनों मैंने स्वयं एक कविता लिखी।

गोपा—अच्छा, तो तुम स्वयं भी कवयित्री हो।

सरिता—(जैसे किसी भूली घटना को याद करते हुए) नहीं, कवयित्री तो क्या हूँ उन दिनों मैं बड़ी व्यथित थी। मुझे रात को नींद न आती थी। असीमा के बर्ताव से मेरे हृदय में आग सी लगी रहती थी—तब अपने मन का बोझ हलका करने के लिये मैंने एक कविता लिखी थी।

गोपा—किन्तु असीमा ने क्या किया तुम्हारे साथ ?

सरिता—तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं, उसने मेरे साथ कैसा बुरा बर्ताव किया। उस पर मेरा अपार स्नेह था। हम साथ-साथ पढ़ीं, साथ-साथ खेलीं, एक बिस्तर पर सोईं। घर हमारे साथ साथ

और प्रेम अथाह ! जब मैं नौकर हो कर ओकाड़ा चली गई तो हम बहुत दिनों तक एक-दूसरी को प्रतिदिन पत्र लिखती रहीं। गर्मियों की छुट्टियों से पहले असीमा के कई पत्र आए कि मरी जरूर आओ। मैं स्वयं ओकाड़े की धूल और पसीने से भरी दुपहरियों और गला घोंटने वाली गर्म संध्याओं से ऊब चुकी थी।

गोपा—तुमने लाहौर में क्यों न नौकरी कर ली ?

सरिता—(दर्द से हँसती है) यह लम्बी कहानी है।मैं लाहौर से दूर ही रहना चाहती थी। (बात को जारी रखते हुए) मैं मरी चली गई—असीमा के पास। उन दिनों गुणेन्द्र वहां आया हुआ था।

गोपा—गुणेन्द्र कौन ?

सरिता—एक लड़का था। मुझे असीमा ही से पता चला कि वह उससे प्यार करता है और स्वयं असीमा को भी उससे विवाह करने में आपत्ति नहीं, और उसकी मां भी राज़ी है।—

(गोपा दिलचस्पी से सिर हिलाती और मुस्कराती है।)

—लेकिन इतने दिन तक उसके साथ रहने पर भी गुणी ने कोई ऐसा प्रस्ताव न किया था, और असीमा आतुर हो उठी थी।

गोपा—(दिलचस्पी से हँसती है) खूब !

सरिता—मैंने गुणी को देखा। असीमा ने स्वयं उससे मेरा परिचय कराया—मँझले क़द का सुन्दर हृष्ट-पुष्ट युवक था। असीमा उससे कुछ लम्बी थी। पर जोड़ी बुरी न थी। असीमा ने मुझसे कहा कि मैं उससे मेल-मिलाप बढ़ाऊं और उसे विवाह का प्रस्ताव करने पर राज़ी करूं। 'वह फैसला करे', असीमा ने कहा, 'मैं इस बात को लटका रखना नहीं चाहती। नहीं मेरी मा कहीं और 'हाँ' कर देगी।'

(गोपा दिलचस्पी लेते हुए मुस्कराती है)

—यद्यपि मैं इस मामले में क़तई न पड़ना चाहती थी पर असीमा के अनुरोध से तंग आकर मैंने गुणी से मेल-जोल बढ़ाया और असीमा ने मुझपर अभियोग लगाया कि मैंने गुणी को उससे छीनने की कोशिश की थी।

गोपा—(जो कहानी सुनते सुनते कौंच पर पीछे को झुक गई थी, अचानक चौंक कर) क्या ?

सरिता—मैंने केवल असीमा के लिये उससे बातचीत की—उसे समझाया कि यदि वह उससे प्यार करता है, और प्रकट है कि वह उससे प्यार करता है, तो विवाह के लिए उसकी माँ से कहे। मैंने उसे बताया कि असीमा को भी उससे असीम प्रेम है। फिर झिझक कैसी ?—लेकिन यह अजीब बात है, मैं अब तक नहीं समझ सकी, क्यों उसने ऐसा किया—पर जितना भी मैं असीमा के लिये उसके निकट गई उतना ही वह असीमा से दूर होता गया। यहाँ तक कि एक दिन उसने अपनी गम्भीरता को हँसी में छिपा कर मुझी से विवाह का प्रस्ताव कर दिया।

गोपा—(जोर से ठहाका मार कर हँसती हुई) वाह !

सरिता—मैंने तत्काल जाकर असीमा से कह दिया। उसके सामने सारी परिस्थिति रख दी। उस लड़के की मूर्खता पर हँसी। उसे समझाया कि मेरे मन में गुणी के लिये रत्ती भर भी स्थान नहीं। ऐसा होना निपट असम्भव है। हमारे मध्य किसी प्रकार की समानता नहीं—जाति, शिक्षा, विचार, वयस—किसी प्रकार की भी तो नहीं। किन्तु असीमा को विश्वास न आया; उसने न जाने मुझे कैसे कैसे ताने दिए। 'तुम चाहे उससे विवाह न करो', उसने कहा, 'पर तुम

उससे खेलना अवश्य चाहती हो। यह जानकर तुम्हारे अहम् को सान्त्वना मिलती है कि वह भी तुम्हारे चाहने वालों में से है'.....न जाने वह और क्या क्या कहती यदि मैं तत्काल वहाँ से उठ कर चली न आती। अड्डे पर मुझे तीन घण्टे तक लारी की प्रतीक्षा करनी पड़ी। मैंने अड्डे पर बैठे रहना स्वीकार कर लिया किन्तु वापस न गई।

(बेचैनी से कमरे में एक चक्कर लगाती है)

—ओकाड़ा पहुँच कर मैंने इस घटना को भूलने का बड़ा यत्न किया। जब सफल न हुई तो मन के बोझ को हल्का करने के लिये मैंने एक कविता लिखी।

गोपा—ओह! और फिर वह कविता तुमने उनको भेज दी।

सरिता—मैंने तो इस बात की कल्पना तक न की थी, पर मेरे भाई ने सलाह दी कि इसे किसी को दिखा कर छपवा देना चाहिए और तब मुझे इस बात का ध्यान आया।

(फिर अँगड़ाई लेती है।)

—यह पानी—यह तो थमता ही नहीं, और मैं वहाँ आज ही पहुँचना चाहती हूँ। कल तो मुझे वापस चल पड़ना है।—

(कुछ क्षण खिड़की के पास खड़ी रहती है।)

—देखो तो! बरसते पानी ने जैसे भागती हुई आँधी को पकड़ कर बाँध लिया है। मूसलाधार वर्षा में धूल के तड़फड़ाते हुए इस काले अजगर को तो देखो।—

(गोपा उठ कर उसके पास चली जाती है।)

—आकाश निर्मल हो रहा है। शायद वर्षा थम जाए। मुझे चल देना चाहिए।

गोपा—नहीं। बादल घुल रहे हैं। झड़ी लग जायगी—रिम झिम रिम झिम...स्वर भी न होगा। बस बरसता रहेगा भगवान की निःस्वन कृपा की भाँति !

सरिता—कृपा ! (व्यंग से मुस्कराती है) मेरे लिये तो यह एक यातना बन गई।—

(निराश होकर कमरे का एक चक्कर लगाती है। तख्त पर पड़ी हुई पुस्तक को उठाकर देखती है।)

—यह कौन सी पुस्तक है ?

गोपा—(हँस कर) तुम्हारे काम की नहीं। वनस्पति विज्ञान पर एक ट्रीटाइज़ (treatise) है। कविता की अपेक्षा विज्ञान मुझे अधिक पसन्द है।—

(सरिता अनमने भाव से पुस्तक खोल कर देखने लगती है।)

—तुमने नाम तो उनका बताया नहीं। प्रीतनगर में तो अधिकांश सिक्ख रहते हैं।

सरिता—(हँस कर) नहीं ! वे तो ब्राह्मण हैं।

गोपा—(तनिक चौंक कर) ब्राह्मण ! उनका नाम क्या है ?

सरिता—गौतम !

गोपा—(चेहरे पर एक बादल सा आ जाता है।) गौतम !

सरिता—(पुस्तक से नज़र हटाकर) क्यों ! वे तो बड़े प्रसिद्ध कवि हैं।

गोपा—(सम्हल कर मुस्कराती है) हाँ, वे प्रसिद्ध कवि हैं।

(फिर जा कर कौच पर बैठ जाती है)

सरिता—(पुस्तक को वहीं फेंक कर उसके पास आती है।) क्या तुम उन्हें जानती हो ?

गोपा—नहीं। (कुछ क्षण बाद, जैसे किसी दूसरी दुनिया से बोल रही हों) एक बार इसी प्रकार आँधी-पानी में कुछ घड़ियों के लिए आए थे। बाबा प्रायः उनका ज़िक्र किया करते हैं।

(फिर उठ कर कमरे का एक चक्कर लगाती है और आरामकुर्सी पर जा कर लेट जाती है। सरिता फिर जाकर तख्त से पुस्तक उठाती है और पढ़ने की चेष्टा करती है, पर उसे उबासियां आती हैं, इसलिये लेट जाती है।)

गोपा—(सहसा चौंक कर) यहाँ न लेटिए ! (उठ कर उसके पास जाती है) इधर आइए, मेरे साथ अन्दर कमरे में। दस-बीस मिनट आराम कीजिए।

सरिता—(लेटे लेटे) मुझे सोना नहीं। मैं तो यों ही तनिक कमर सीधी करना चाहती हूँ।

गोपा—आप निश्चिन्त होकर लेटिएगा। ज्यों ही वर्षा कम हुई, मैं आपको जगा दूंगी।

(सरिता उठती है। गोपा उसे अन्दर कमरे में ले जाती है और बाहर खड़े खड़े ही संकेत करती है)

—वह मेरी चारपाई है। (हँस कर) आप निस्संकोच उस पर आराम कीजिए। उमस लगे तो बाहर का दरवाज़ा खोल लीजिएगा। (संकेत करते हुए) यह आंगन में खुलता है और वह बाहर बरामदे में।

(सरिता भीतर चली जाती है। गोपा दरवाज़ा लगा कर पर्दे छोड़ देती है और फिर चुपचाप सिर नीचा किये घूमती है।)

—(**कमरे में घूमते हुए अपने आप**) हूँ ! तो यह कवि भी हैं और शिकारी भी ! (**फिर कुछ क्षण चुप घूमती है**) और ये कविताएँ—चुम्बक हैं ! कितनी दूर से लोह-चून को खींचती हैं—मिंटगुमरी, ओकाड़ा, लाहौर, अटारी और फिर यह देहात...

(**कोई किवाड़ खटखटाता है**)

—किन्तु मैं तो काव्य की रसिक नहीं, (**और भी धीमे स्वर में**) फिर मैं क्यों चली आई इस जलते-तपते मरुस्थल में...

(**कोई और भी ज़ोर से किवाड़ खटखटाता है। गोपा मुड़ कर दरवाज़ा खोलती है। गौतम बरसाती पहने निचुड़ता हुआ प्रवेश करता है।**)

गोपा—ओह ! आप ?

गौतम—हाँ, मैं ! (**कोट उतार कर खूंटी पर टांगते हुए**) क्यों ? मैंने कहा न था—शनि को आऊँगा। तुम भूल ही गईं ?

गोपा—नहीं...नहीं...यह आँधी-पानी...

गौतम—(**रूमाल से आँखें पोंछते हुए**) ओफ़, यह आँधी ! (**आँखें मलते हुए**) ऐसा लगता है जैसे इस मरु की सारी रेत इन आँखों में पड़ गई हैं...और यह पानी...यदि चौगावां से कपूर का कोट न ले लेता...(**हँसता है**) वह भी साथ था। पश्चिमी आकाश के तेवर देख कर वह तो रुक गया वहीं। मैंने कहा, मैं तो जाऊंगा...इक्के वाला न चलता तो मैं पैदल चला आता।

(**गोपा हँसती है**)

—(**जूते पायदान पर साफ़ करते हुए**) तुम्हें शायद विश्वास नहीं होता ! सचमुच मैं पैदल चला आता। यह हँसी नहीं। तुम समझती हो—मैं दस मील भी पैदल नहीं चल सकता !

गोपा—(**व्यंग से**) आपके विषय में तो नहीं कह सकती, किन्तु दुनिया में ऐसे लोगों की कमी नहीं जो दस तो क्या सौ मील...

गौतम—तुम यदि लाहौर से वनीके तक आ सकती हो, तो मैं क्या प्रीतनगर से यहाँ तक नहीं आ सकता ?

गोपा—मैं तो बाबा को देखने आई हूँ। फिट आ जाते हैं उन्हें। लेकिन संसार में ऐसे लोगों का अभाव नहीं जो.....

गौतम—शायद तुम्हारे दर्प को यह मानना स्वीकार नहीं कि तुम किसी मुझ जैसे गरीब के लिए इतनी दूर चली आई हो ! (**उसके समीप आकर कुर्सी पर बैठ जाता है और खिन्नता से हँसता है**) लेकिन मुझे यह स्वीकार करने में तनिक भी लज्जा नहीं कि मैं तुमसे और केवल तुमसे मिलने के लिए इस आँधी-पानी के थपेड़े सहता चला आया हूँ। (**लम्बी सांस लेता है**) तुम शायद इसे अपना अपमान समझती हो कि एक दीन-दुखी कवि से मिलने इतनी दूर चली आओ।

गोपा—दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करना आपको भली-भाँति आता है।

(**कुर्सी से उठ कर तख्त पर बैठ जाती है।**)

गौतम—(**उठ कर उसके पीछे जाता हुआ**) तुम्हें यह हो क्या गया है ? तुम मेरी बेबसी पर हँसती हो !

(**गोपा चुप रहती है।**)

—मेरा जीवन एक विशाल मरुस्थल था गोपा, इसीलिए मैंने नगर के कोलाहल से नाता तोड़ इस वीराने को अपना साथी बनाया, जहां दिन को गर्म लू कीकर और पराँह के पेड़ों तक को जलाती हुई चलती है, और रात इन निर्जन वीरानों में जंड और करीर की झाड़ियों

में सायं-सायं करती हुई खेलती है और जहां किसी एकाकी किसान का गीत किसी बेबस की चीत्कार सा दिल को चीरता हुआ चला जाता है—इस मरु का मौन गोपा, मेरे हृदय का मौन बन गया था और इस निर्जन का सूनापन मेरे हृदय का सूनापन। लेकिन जब से तुमने—गोपा !—तुमने अपनी मादक दृष्टि से इसे देखा है, इसमें मधुबन खिल उठे हैं—रंग, राग, रस और गंध से भरे मधुबन—इस मरु की तपन मिट गई है और अनजाने पंछियों ने अपने रसीले गीतों से इसके सूनेपन को मुखरित कर दिया है।

गोपा—(सहसा उठ कर खिड़की की ओर जाते हुए अपने आप) ओह, मैं समझ गई, मैं समझ गई, मुझे कौन से चुम्बक ने खींचा.....

गौतम—(उठ कर उसके पीछे जाता हुआ, खिड़की के बाहर संकेत करके) इस ओर देखो—इन काली, कजरारी घटाओं को—इनकी एक करुणामयी दृष्टि से ये वीराने लहलहा उठेंगे; धान, ईख और मकई की खेतियाँ वायु के सरस परस से लहलहा उठेंगी ; शटाला और सेंजी की गंध पशुओं को मदमत्त बना देगी और करीर के लाल गुलाबी फूलों से मरुस्थल जगमगा उठेंगे—मेरे मन के मरु की ओर भी इसी मदमाती घटा की भांति ताका है तुमने गोपा !

(गोपा उत्तर नहीं देती, चुपचाप तेवर चढ़ाए गहरी सोच में डूबी घूमने लगती है।)

गौतम—(उसके पीछे जाता हुआ) और मेरा हृदय ही नहीं, हृदय के समस्त भाव रंग, रस और राग से शराबोर हो उठे हैं। मेरी उदासी मुस्करा उठी है। अभी कल मैंने एक गीत लिखा—"आज मेरे आँसुओं में याद किसकी मुस्कराई"—हाँ मुस्कराई। पहले यदि मैं लिखता तो याद रो सकती थी, तिलमिला सकती थी, पर मुस्करा न

सकती थी, किन्तु आज ? (भाता है) "आज मेरे आसुओं में याद किसकी....."

गोपा—(मुड़ कर एक व्यंग और शरारत से भरी मुस्कान से) मैं बताऊँ, किसकी ?

गौतम—(बिलकुल उसके पास जाकर) कहो गोपा, किसकी ! कहो !.....कहो !... ।

(दोनों एक-दूसरे के सामने क्षण भर खड़े रहते हैं। गौतम की आँखों में आशा की चमक है और गोपा की आँखों में घृणा, उपेक्षा और क्रोध की तरेर।)

—(आर्द्र कंठ से) बताओ !

गोपा—सरिता की !

गौतम—(आँखों की चमक मन्द पड़ जाती है) सरिता की !

गोपा—ओकाड़े वाली हेडमिस्ट्रेस की।

गौतम—(धीरे से) तुम उसे कैसे जानती हो ?

गोपा—(चुप)

गौतम—क्या वह तुम्हारे साथ पढ़ती थी ? क्या उसने तुम्हें कुछ लिखा है ?

गोपा—उसने मुझे लिखा है कि मैं उनसे प्रेम करती हूँ।

गौतम—पगली !

गोपा—(व्यंग से) यदि प्रेम करना पागलपन है तो... ..

गौतम—नहीं.....लेकिन...मेरा मतलब है कि...

गोपा—उसने यह भी लिखा है कि वे भी मुझसे प्रेम करते हैं।

गौतम—(खोखली हँसी से) प्रेम !

गोपा—(चोट पर चोट लगाती हुई) यद्यपि आपने उसे कभी नहीं देखा, किन्तु वह लिखती है, 'किसी अज्ञात शक्ति ने हमारे दिलों के मोती एक सूत्र में पिरो दिए हैं।' वह आपसे मिलने को आतुर है। आपने उसे लिखा...

गौतम—(चौंक कर) मैंने उसे क्या लिखा ?

गोपा—(व्यङ्ग और उपेक्षा से) 'कि यदि तुम कुछ दिनों के लिये आ जाओ तो मेरी ये उदास और नीरव घड़ियाँ गा उठें'—और मैं जानती हूँ वह चली आएगी। वह लिखती है, 'हम दोनों को एक-दूसरे से अथाह प्रेम है।'

गौतम—(व्यङ्ग से हँसता है) अथाह प्रेम !

गोपा—(आँखों में शरारत है) क्यों, मैंने ग़लत कहा ?

गौतम—(तनिक आश्वस्त) न मैंने उसे देखा न जाना। वह एक पागल रूमानी (romantic) लड़की है—सपनों की दुनिया में बसने वाली—और मैंने उसके रोमांस को तोड़ना उचित नहीं समझा।

गोपा—(व्यङ्ग से) आप कितने दयालु हैं ! कितने करुणामय ! सदा उसके पत्रों का लौटती डाक से उत्तर देते रहे, कहीं उस बेचारी के बनते हुए स्वप्न-महल में ज़रा सी भी दरार न आ जाए; अपनी मीठी दर्दभरी बातों का मसाला लगाते रहे, कि वह महल दृढ़ से दृढ़तर होता जाए; फिर अपने पास बुला कर आपकी करुणा ने उस महल को सम्पूर्ण करना भी अपना कर्तव्य समझा—आप कितने सहृदय हैं, कितने दयालु, कितने करुणामय !

गौतम—(सम्हलने की कोशिश करते हुए एक खोखला कहकहा लगा

कर) ओह, मैं समझा। तुम्हारी इस उपेक्षा पर मैं चकित था। इस आँधी-पानी में इतना कष्ट झेल कर मैं आया, पर तुमने मुझे चाय तक के लिए नहीं पूछा !

गोपा—(व्यङ्ग से) मैं उतनी दयालु जो नहीं।

गौतम—(बिगड़ी बात बनाने की चेष्टा करते हुए) तुम्हें ज्ञात तो कुछ है नहीं, यों ही जली-कटी सुना रही हो।

गोपा—मुझे आपसे भी अधिक ज्ञात है और सरिता से भी—मैं भावनाओं की धारा में बह जाने वाली पागल रूमानी लड़की नहीं हूँ। मैं काव्य की अपेक्षा विज्ञान को अधिक पसन्द करती हूँ। किन्तु चुम्बक का जादू मुझ पर भी हो चला था। इसी प्रकार आंधी-पानी में भीगते हुए जब आप आश्रय खोजते खोजते यहाँ आए थे तो आपकी बातों ने मुझे मोह लिया था। दूसरों की सहानुभूति प्राप्त करने में आपको अपूर्व दक्षता प्राप्त है। आपने कहा—गौतम और गोपा—शायद हम आदि काल से एक-दूसरे के लिए बने हैं।—और आपके ये शब्द मेरे श्रवणों पर छा कर रह गए। उन सब पर विश्वास न करते हुए भी मैं समझने लगी—कदाचित आप सच कहते हैं। किन्तु मेरे पैर बिल्कुल नहीं उखड़े। सरिता की बातें सुन कर मुझ पर सारी परिस्थिति अपनी समस्त वास्तविकता के साथ खुल गई।

गौतम—(हताश) न जाने उसने तुम्हें क्या लिख भेजा है। बात केवल इतनी है कि उसने मुझे एक कविता ठीक करने के लिये भेजी थी। मैंने उसका दिल तोड़ना उचित नहीं समझा। हाँ, मैं उसके पत्रों का उत्तर देता रहा, लेकिन यह सब तो मात्र शिष्टाचार के नाते था और उसने मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट की।...

गोपा—और आपने अपने मौन एकांत, प्रतिपल गहरे होते अपने

अवसाद, इन नीरस निर्जन वीरानों के सूनेपन का ज़िक्र करके उसके मन में यह इच्छा उत्पन्न नहीं की—इस अथाह सूनेपन का, ठहरे रुके जीवन-सागर में निवश हाथ पैर मारने वाली अपनी घड़ियों का, गला घोंटने वाले अपने एकांत का रोना रोकर आपने उसकी सहानुभूति को प्रेम के अदम्य भाव में परिणत नहीं किया ?—उसके कल्पना-जगत में एक श्रान्त और दुखी कवि है जिसे विपदाओं ने ग्रस कर निर्जीव कर दिया है। उस कवि के दुःख को बटाने, उसके घावों पर प्रेम का ठण्डा फाहा रखने, उसे फिर से जीवन-दान देने वह अनायास चली आएगी। उसे क्या मालूम कि यह कवि शिकारी है...

गौतम—गोपा.....

गोपा—पीड़ा से भरी करुण मधुर बातों का दाना बखेर कर पंछी को फँसाना जानता है। वह बेचारी क्या जाने की पंख काट कर वह उसे छोड़ देगा, पिंजरे तक में बन्द करके न रखेगा ?

गौतम—गोपा—

गोपा—मैं पूछती हूँ, कवि के काव्य और कर्म में इतना अन्तर क्यों ? क्या यह अच्छा न था कि यह कवि कवि न होकर मात्र मनुष्य बनता, (कमरे में घूमते हुए) मात्र मनुष्य बनता ?

गौतम—(उसके पीछे जाते हुए) तुम मेरी बात तो सुनो गोपा...

गोपा—(मुड़ कर) ऐसी ही बातों से आप मुझे फँसाना चाहते हैं, किन्तु मैं भली भाँति जान गई हूँ कि काव्य के संसार का दुखी, उदास, व्यथित कवि यथार्थ जगत का हँसमुख शिकारी है जिसे अपने शिकार को फँसाने में रस मिलता है और जो उसका तड़फड़ाना देख कर ज़रा भी तो नहीं पसीजता।

गौतम—गोपा !

गोपा—(**धीरे धीरे घूमते हुए**) तुम सरिता से सिर्फ खेल रहे हो, या फिर उससे नहीं तो मुझसे खेल रहे हो ! (**हँसती है**) और न जाने और कौन कौन तुम्हारे इस भयानक खेल के खिलौने बनी हुई हैं ।

गौतम—गोपा ?

गोपा—(**मुड़ कर**) क्या तुम यह सब बातें उसके मुँह पर कह सकते हो ?

गौतम—बातें ?

गोपा—कि तुम उससे प्रेम नहीं करते, कि वह एक पागल रूमानी लड़की है, कि तुमने केवल दया करके...

गौतम—मैंने कभी उससे प्रेम नहीं किया ।

गोपा—(**चीख़ कर**) तुम उसके मुँह पर कह सकते हो ?

गौतम—(**झिझकते हुए**) मैं...मैं...उसके मुँह पर कह सकता हूँ ।

गोपा—(**नौकर को आवाज़ देती है**) दूलो...दूलो...

(**नौकर आंगन के दरवाज़े से झांकता है ।**)

गोपा—इस कमरे में वह बीबी जी सोई हुई हैं, ज़रा उनको जगा दो ।

गौतम—(**चेहरे का रङ्ग फीका पड़ जाता है**) क्या वह...क्या सरिता...

गोपा—हाँ सरिता !—आपके इस घायल हृदय पर प्रेम का ठंडा फाहा रखने के लिये इस आंधी-पानी में एक टूटे से इक्के पर इतनी

से चली आई है ! (**दूलो को खड़े देख कर**) मुटर-मुटर क्या तक रहा है ! जा बुला ला उन्हें !

दूलो—जी वे तो चली गईं ।

गोपा—चली गईं ?

दूलो—आपको इन से बातें करते देख कर उधर ही से चली गईं । कहती थीं—मुझे देर हो रही है, मुझे आज ही प्रीतनगर पहुँचना है—गोपा बहिन से मेरी ओर से क्षमा मांग लेना । मैंने कहा, "बीबी जी आपके कपड़े तो अभी गीले हैं ।" बोलीं, "आते समय लेलूंगी !"

गोपा—चुम्बक का जादू अभी उसके लिये बना हुआ है । लोह-चून की भाँति वह खिंची चली जायगी । (**लम्बी सांस लेती है**) पर मेरे लिये चुम्बक टूट गया । मुझ पर उसके आकर्षण की यथार्थता खुल गई । (**व्यङ्ग से हँसती है**) पागल रूमानी लड़की.....लेकि अवसर पड़ने पर कौन पागल और रूमानी नहीं बन जाता ? (**मुड़ कर ज़रा हँसते हुए गौतम से**) मैं चाय पूछना तो भूल ही गई । कहिए चाय पीजिएगा ? (**और भी हँसते हुए**) कपड़े बदल डालिए ! भीग गए हैं।

(**सहसा पर्दा गिर जाता है ।**)

चिलमन

पात्र

हरि— एक कवि जो अपनी रुग्ण पत्नी की शुश्रूषा में निमग्न है।

किरण— उसकी रुग्ण पत्नी

मा— उसकी माँ

रूपा— उसकी बहिन

मनोहर— उसका मित्र जो शशि से प्रेम करता है

शशि— हरि से प्रेम करने वाली एक तरुणी जो रंग मंच पर नहीं आती।

राघे— हरि का छोटा भाई।

स्थान —

तीस हज़ारी दिल्ली में बीमार किरण का कमरा।

समय—

रात का पहला पहर।

[पर्दा उठते समय स्टेज पर बिलकुल अँधेरा है। माँ प्रवेश करती है।]

माँ—यह तुमने अँधेरा क्यों कर रखा है? बत्ती क्यों नहीं जलाते?

[बिजली का बटन दबाती है। कमरे में प्रकाश हो जाता है। हरि किरण की चारपाई के पास बठा दिखाई देता है। किरण चादर ओढ़े अचेत पड़ी है। उसके टखनों में रस्सियों के साथ दो ईंटें बँधी हुई हैं। कमरा बिलकुल साफ़ है। चारपाई के पास छोटी सी मेज़ पर दवाइयों की कुछ शीशियाँ पड़ी हैं। इसके अतिरिक्त कमरे में और कुछ भी नहीं। सामने की दीवार में एक खिड़की है, जिस पर चिलमन लगी हुई है।]

हरि—रोशनी बुझा दो, रोशनी बुझा दो, किरण की दशा कुछ अधिक ख़राब है। रोशनी से वह घबराती है। परसों से धूप की शिकायत कर रही है।

माँ—तुम तो पागल हो जो अँधेरे में भूतों की तरह बैठे हो। उठो, मैं इसके सिरहाने बैठती हूँ। तुम ज़रा उन लोगों के साथ जाकर मन बहलाओ। ताश खेलो...

[दूसरे कमरे से क़हक़हों की आवाज़ आती है।]

हरि—मैं यहीं बैठना चाहता हूँ। तुम रोशनी बुझा दो।

माँ—शशि क्रिसमस की छुट्टियों में आई है। घर न ठहर कर वह सीधी तुम्हें मिलने चली आई है। वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

हरि—मैं इसके सचेत होने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

[दूसरे कमरे से फिर क़हक़हों की आवाज़ आती है।]

—इसकी दुर्बलता आज अत्यधिक बढ़ गई है, घड़ी-घड़ी यह अचेत हो जाती है, तुम ज़रा उन लोगों से कह दो—इतने ज़ोर से न हँसें।

माँ—कौन हँसता है ? आज चार वर्ष से हँसी क़हक़हे इस घर के लिए पराये हो रहे हैं। सदैव यहाँ एक मौत का-सा समाँ छाया रहता है। आज शशि आई है। और उसके साथ मनोहर। और यह भारीपन कुछ दूर हुआ है। बहू की बीमारी का क्या ठिकाना ? और वर्ष भर भी रह सकती है, पर वह तो विशेष कर तुम्हें देखने बनारस से आई है। तनिक उनके पास जा बैठो...

हरि—मैं कहीं नहीं जाना चाहता। तुम रोशनी बुझा दो। यह दोपहर से बेहोश पड़ी है। होश में आएगी तो रोशनी से घबरा जाएगी।

माँ—(**बत्ती बुझाते हुए**) तो निपट अँधेरे में बैठने से, मिट्टी का दिया ही जल लो।

[चली जाती है]

किरण—(**होश में आकर**) यह घुप्प अँधेरा क्यों है ? (**और भी घबराए हुए स्वर में**) यह घुप्प अँधेरा क्यों है ?...मैं...मैं...

हरि—मैं तुम्हारे पास बैठा हूँ।

किरण—यह बाहर कुछ दिखाई क्यों नहीं देता ? क्या आकाश पर बादल छाये हुए हैं ? क्या कृष्ण-पक्ष आरम्भ हो गया ?..... किन्तु एक तारा भी तो आकाश पर नहीं।

चिलमन

हरि—नहीं आज तो पूर्णमासी है। खिड़की पर चिलमन लगी हुई है। तुम भूल गई, तुम्हीं ने तो कहा था—सूरज की धूप सीधी आँखों पर आकर पड़ती है। यहाँ कोई चिक लगवा दो। आज दोपहर ही यह चिक बनकर आई है। साधारण मारकीन की नहीं, इस पर रंगा हुआ टाट लगा है—गहरे नीले रंग का—प्रकाश की किरण तक इसके अन्दर नहीं आ सकती। पर तुम तो सो रही थीं।

किरण—मैंने इसे नहीं देखा। (**लम्बी साँस लेती है**) न जाने क्यों मुझे कुछ नींद-सी आ जाती है। बीमारी से जूझ-जूझकर थके हुए मेरे अङ्ग आप से आप सो जाते हैं। चेतना-हीन से हो जाते हैं। पर इस चिक को अब उठा दो। मैं प्रकाश चाहती हूँ...

हरि—मैं बिजली की बत्ती जला दूँ ?

किरण—नहीं, नहीं। बिजली की रोशनी से मुझे घबराहट होती है। इस चिलमन ही को उठा दो। मैं प्रकाश चाहती हूँ...ठण्डा, शान्त, सुखद प्रकाश...

[हरि जाकर चिक उठाता है ! कमरे में मद्धम-सी ज्योत्स्ना फैल जाती है।]

—तनिक और ऊँची, तनिक और ऊँची, इसे पूरी उठा दो ! इस उजली, धुली, ठण्डी चाँदनी को कमरे में बे-झिझक आने दो। मन होता है।—चाँदनी में जी भरकर स्नान करूँ। किरणों से मल-मलकर नहाऊँ। आह ! पर यह ईंटों का बोझ—ये ईंटें अब उतार दो !

हरि—अभी परसों तुम्हारे पलास्टर लगाया गया था, डाक्टर कहता है...

किरण—डाक्टर ! (**लम्बी साँस लेती है**) ऐसा प्रतीत होता है

मानों जब से मैंने होश सम्हाला है, मैं इसी तरह विवश पड़ी हूँ; मेरे दखनों से इसी तरह ईंटें बँधी हैं; मैं हिल नहीं सकती; बैठ नहीं सकती; उठ नहीं सकती और कभी-कभी मैं सोचती हूँ कि यदि आप इन ईंटों की रस्सियाँ काट भी दें तो क्या मैं उठकर चल-फिर सकूँ ? (**फिर दीर्घ निश्वास छोड़ती है**) टाँगें शायद चलना भूल गई हैं। (**आकांक्षा भरे स्वर से**) मैं इस चाँदनी रात में कितना घूमना चाहती हूँ !

[**दूसरे कमरे से फिर क़हक़हों की आवाज़ आती है।**]

किरण—यह कौन है ?

हरि—मनोहर है, शायद लोग ब्रिज खेल रहे हैं।

किरण—मुझे ब्रिज खेले जैसे वर्षों बीत गये हैं। मैं कितना ब्रिज खेलती थी ? बाज़ी पर बाज़ी जीता करती थी...मैं ब्रिज खेलना चाहती हूँ। मैं ब्रिज खेलना चाहती हूँ। क्या वे इस कमरे में नहीं आ सकते ? क्या मैं उनके साथ ब्रिज नहीं खेल सकती ?

हरि—तुम बहुत दुर्बल हो किरण !

किरण—उनसे कह दो—इस कमरे में बैठकर खेलें। मैं केवल देखूँगी...

हरि—तुम अत्यन्त दुर्बल हो किरण ; डाक्टर कहता है...

किरण—आह डाक्टर !

[**लम्बी साँस लेती है दूसरे कमरे से फिर कहक़हों की आवाज़ आती है**]

हरि—(**चिढ़कर**) ये लोग चुप क्यों नहीं होते ? मैं कितनी बार कह चुका हूँ...

किरण—तुम उन्हें कुछ न कहो ; मेरे कारण घर में पहले ही काफ़ी

उदासी छाई रहती हैं। कोई हँसता नहीं। जाओ तुम भी जाओ। उनके साथ जाकर मन बहलाओ। मैं मन से तुम्हारे साथ हूँगी, मेरी आँखें तुम्हें खेलते देखेंगी...पर मेरी आँखें...मेरी आँखें तो बन्द हो रही हैं, वह ताक़त की दवा कहाँ है ? वह ताक़त की दवा कहाँ है ? मुझे नींद से डर लगता है, मुझे नींद से.....

[हरि शक्ति की दवाई ढूंढ़ता है। माँ दिया लिये प्रवेश करती है]

हरि—(अपने आप खीज भरे स्वर में) मैं कहता हूँ वह ताक़त की दवा कहाँ है ?

माँ—क्या बात है ? क्या ढूँढ़ रहे हो ?

हरि—वह ताक़त की दवा कहाँ है ? किरण फिर अचेत हो गई है।

माँ—इस अँधेरे में तुम्हें क्या मिलेगी, यह लो मैं दिया ले आई हूँ। अँधेरा ठीक नहीं। अँधेरा अशुभ है। अँधेरा...

हरि—बाहर चाँद चमक रहा है।

माँ—पर कमरे में तो अँधेरा है। बिजली नहीं जलाना चाहते तो इसे ताक़ में पड़ा जलने दो।

[दिया ताक़ में रख देती है। वहीं दवा की शीशी पड़ी मिल जाती है, उसे उठा लेती है।]

माँ—और यह लो शीशी। यही शायद ताक़त की दवा है। पर मेरी मानो तो अब इसे आराम करने दो। इन औषधियों और इन प्लास्टरों से इसे मुक्ति दो !

हरि—तुम्हें कुछ मालूम नहीं तो चुप रहो। और देखो उनसे कह दो कि इतना गला न फाड़ें, इतने ज़ोर से न हँसें।

माँ—मैंने उन्हें पहले ही तुम्हारे डर से दूसरे कमरे में भेज दिया है।

हरि—(**जैसे अपने आप**) इसकी तबीयत बेहद खराब है, यह बार-बार बेहोश हो जाती है।

[दवा चमचे में डालकर उसके मुँह में टपकाता है]

—सब गालों पर बह गई। माँ तुम ज़रा चमचा थामो, मैं दाँत खोलता हूँ।

[माँ चमचा लेकर भरती है। हरि दाँत खोलकर फिर दवा डालने का प्रयास करता है।]

—व्यर्थ है, गिर जाती है, बहुत कम अन्दर गई है।

माँ—लो अब आओ। तुम कब से यहाँ बैठे हो। अब उठो। मैं यहाँ बैठती हूँ। तुम उधर जाकर तनिक कमर सीधी कर लो। तनिक उनके साथ जाकर मन बहलाओ। तनिक उनका जी रख लो...

हरि—मैंने एक बार कह दिया मैं नहीं जा सकता। मैं...

माँ—शशि न ठीक तरह से खेल रही है न...

हरि—तो मैं क्या करूँ ? मनोहर वहाँ है...

[किरण दायाँ हाथ हिलाती है।]

—(स्वर में कोमलता लाकर)—किरण

किरण (जैसे सपनों की दुनिया से आनेवाले डरे-डरे स्वर में) मैं प्रकाश चाहती हूँ। मैं प्रकाश चाहती हूँ। मैं अँधेरा नहीं चाहती। (आँखें खोलती है) मेरी चारपाई तनिक उस खिड़की के पास रोशनी में कर दो ! मैं बाहर के दृश्य देखना चाहती हूँ। (लम्बी साँस लेती है)

लगता है जैसे इन दृश्यों के लिए मैं सर्वथा अपरिचित हो गई हूँ। पर ये मेरे सपनों में बार-बार आते हैं, (**तनिक उल्लसित होकर**) अभी मैंने अपने आपको अजीतगढ़ के उस मीनार पर चढ़े देखा था...

हरि—(**शक्ति की दवाई चमचे में डालता हुआ अपने ध्यान में**) अजीतगढ़ के मीनार पर ?

किरण—मैंने देखा, यह सारी की सारी राजधानी मेरे चरणों में बिछी हुई है और सूरज की चमकती हुई धूप में नये मकानों की नयी छतें चमक रही हैं।

हरि—(**दवा की शीशी को मेज़ पर रखता हुआ पूर्ववत बे-ख़याली में**) सूरज तो कब का छिप चुका है।

किरण—हाँ सूरज कब का छिप चुका है। (**उदास होकर**) शायद अब मैं उसे कभी न देख सकूँगी। अजीतगढ़ के मीनार से नये बने हुए मकानों की नयी छतों को कभी न देख सकूँगी।

हरि—(**उसके कंठ में औषधि टपकाता हुआ**) तुम वर्षों तक देखोगी। अपनी इन आँखों से, मेरी इन आँखों से वर्षों तक देखोगी।

किरण—(**औषधि से कुछ शक्ति पाकर तनिक ऊँची और उल्लास भरी आवाज़ में**) आपको वह दिन स्मरण है न, जब रात भर वर्षा होती रही थी और प्रातः भीगी-भीगी, भारी-भारी समीर चल रही थी और मैंने आपको सैर पर जाने के लिए विवश कर दिया था। हम रिज* पर गये थे और पीर-ग़ायब के मज़ार पर चढ़े थे...

---

* तीस हज़ारी दिल्ली के पास एक पहाड़ी है। उस पर रिज (Ridge) भी है और जंगल भी।

हरि—मुझे सब स्मरण है, पर तुम अब चुप रहो, तुम थक जाओगी।

(माँ बेज़ारी से सिर हिला कर चली जाती है)

किरण—नहीं, मैं चुप नहीं रहना चाहती। चुप से मुझे डर लगता है। मैं बोलना चाहती हूँ। मैं हँसना चाहती हूँ। मैं खेलना चाहती हूँ।'...

हरि—तुम अधिक न बोलो किरण, तुम आराम करो।'...

किरण—मैं आराम ही तो करती रहती हूँ।

हरि—तुम्हारा शरीर अवश्य आराम करता है पर तुम्हारा मन सदैव उड़ता रहता है।

किरण—**(लम्बी साँस लेती है)** हाँ, मेरा मन सदैव उड़ता रहता है। अभी-अभी वह उड़कर उस मज़ार के खंडहर पर जा चढ़ा था—याद है न आपको—ठंडी, भीगी, मस्त समीर चल रही थी और नीचे वर्षा से भीगी हुई सड़कें चमकती हुई तरल चाँदी की भाँति बल खातीं, पेड़ों के पत्तों में झलमलाती थीं। मुझे उस बुड्ढे की आकृति याद आती है।

हरि—**(उसके सिर पर प्यार से हाथ फेरता हुआ बेख़याली में)** बुड्ढे की?

किरण—वह नीचे सीढ़ियों से ऊपर चढ़ने लगा था कि मैं उतरने लगी—खिचड़ी-सी दाढ़ी, मटमैले कपड़े, सिर पर पगड़ी और कमर में तहमद—वहीं नीचे सीढ़ियों में खड़ा मुझे टुकर-टुकर ताकता रहा। फिर जब उसने साथ की सीढ़ियों पर आपको भी उतरते देखा तो सहसा नीचे उतर गया **(धीरे-धीरे अत्यधिक तन्द्रिल सोये-सोये-से स्वर में)** और जब हमने धरती पर पाँव रखा था तो आगे बढ़कर गिड़गिड़ाया था—"जोड़ी सलामत रहे भूखा हूँ।"

हरि—भूखा था और नदीदा !

किरण—(**और भी तन्द्रिल स्वर में**) मैं देखती हूँ वही बुड्ढा मेरे सपनों में भयानक रूप धर-धरकर आता है। मैं सदैव देखती हूँ—उसके पेट में एक भयानक भट्ठी धधक रही है, और मैं तथा मेरे जैसी कई उस लपलपाती भट्ठी का ईंधन बन रही हैं।

हरि—तुम अपने मस्तिष्क को थका रही हो किरण !

किरण—(**झुरझरी-सी लेकर जागते रहने का प्रयास करती हुई**) मुझे फिर नींद आ रही है, मेरी आँखों में अँधेरा छाया जा रहा है—नहीं, नहीं मुझे अंधकार से डर लगता है। मेरी चारपाई प्रकाश में कर दो।

हरि—तुम सो जाओ किरण तुम अपने को थका रही हो।

किरण—(**जागने का भरसक प्रयत्न करते हुए**) मैं सोना नहीं चाहती, मैं जागना चाहती हूँ। (**लम्बी साँस लेकर और भी तन्द्रिल स्वर में**) पर मेरी आँखें तो बन्द हो रही हैं। मेरी आँखों में अन्धेरा छा रहा है। मुझे दवा पिला दो। मुझे दवा पिला दो ! मेरी चारपाई प्रकाश में कर दो

[**आँखें बन्द हो जाती हैं।**]

हरि—(**औषधि का चमचा भरकर उसके मुँह की ओर ले जाता हुआ**) किरण...किरण...

[**रूपा प्रवेश करती है।**]

रूपा—तुम दोपहर से इधर बैठे हो, चलो उधर चलो।

हरि—(**औषधि को फिर शीशी में डालता हुआ**) यह अचेत हो गई है।

रूपा—माँ को भाभी के पास बैठने दो। तुम ज़रा चलो, शशि देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। वह मन से खेल में भाग नहीं ले रही। अनमनी सी बैठी है।

हरि—(**सुनी-अनसुनी करके**) तुम ज़रा चारपाई को खिड़की के पास करने में मेरी सहायता करो। यहाँ अँधेरा है और दिये की काँपती हुई रोशनी इस तक नहीं पहुँचती।

[**दोनों चारपाई उठाते हैं।**]

—ज़रा धीरे! ज़रा धीरे! ईंटों के हिलने से इसे कष्ट न हो। (**खिड़की के पास चारपाई ले जाते हुए**) इस अँधेरे में इसकी दुर्बल आकृति और भी दुर्बल दिखाई देती है।

रूपा—अब इसमें रखा ही क्या है? कभी तृप्त न होनेवाली जोंक की भाँति मुई इस बीमारी ने इसका सारा लोहू पी लिया है। तुम व्यर्थ ही इस यातना को बढ़ाए जा रहे हो। व्यर्थ ही सारा-सारा दिन इसके सिरहाने परेशान से बैठे रहते हो। तनिक अपना मुँह तो देखो—कितना पीला पड़ गया है?

हरि—तुम इसका मुँह देखो—पीला भी नहीं श्वेत है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह समस्त ज्योत्सना इसके शरीर से निकलकर इस सारे ब्रह्माण्ड पर फैल गई है और अपनी सारी ज्योति लुटाकर यह शरीर श्रीहीन-सा होकर मुरझा गया है।

रूपा—तुम कैसी बातें करते हो? उठो, माँ को यहाँ बैठने दो। चलकर कुछ देर के लिए शशि के पास बैठो, बनारस से वह केवल तुमसे मिलने दिल्ली चली आई है। तुम कैसे पत्थर हो!

हरि—(**उसकी बात का उत्तर न देकर**) यह चादर तुम इसके पाँवों पर करदो, नंगे हो गये हैं।

रूपा—न जाने कब तक तुम इस कंकाल के सरहाने बैठे रहोगे ?

हरि—(**जैसे अपने आप**) न जाने मैं कब तक इस कंकाल के सरहाने बैठा रहूँगा ? अपनी सूनी घड़ियों में, अपने जाग्रत सपनों में, अपने उन्मन एकान्त में...मैं स्वयं एक कंकाल बन जाऊँगा।

रूपा—(**भरे हुए गले से**) तुम्हें क्या हो रहा है ? तुम्हें दिन-प्रतिदिन क्या होता जा रहा है ?

[**किरण हाथ हिलाती है**]

हरि—ठहरो ! यह होश में आ रही है।

किरण—(**होश में आकर डरे-डरे स्वर में**) नहीं-नहीं, मैं अँधेरा नहीं चाहती। मैं अँधेरा नहीं चाहती, मैं प्रकाश चाहती हूँ। मेरी चारपाई प्रकाश में करदो।

हरि—तुम आँखें खोलो, देखो तुम्हारी चारपाई पर शुभ्र, धवल, निर्मल प्रकाश फैला हुआ है। बाहर सड़क पर, पहाड़ी के पत्थरों पर, चट्टानों पर, पेड़-पौधों पर धुला-निखरा नूर फैला हुआ है।

किरण—ओह ! मैं कितना डर गई हूँ ?

[**आँखें खोलकर सुख की एक साँस लेती है।**]

हरि—(**चमचे में दवा डालकर उसकी ओर बढ़ाता है**) तुम यह दवा पी लो !

किरण—(**दवा पीकर फिर सुख की साँस लेती है।**) मैं कितना डर गई हूँ ! (**तन्द्रिल स्वर में**) अभी-अभी मैं देख रही थी—मैं इस

जंगल में भटक गई हूँ—पत्थरों से ठोकरें खाती, झाड़ियों से उलझती अँधेरे में रास्ता ढूँढ़ती हूँ। मैं चली जाती हूँ। उलझती, गिरती, भटकती, अरावली की ऊँची पहाड़ियों तक चली जाती हूँ—सहसा सामने एक भयानक काला पहाड़ आ जाता है। मैं उस पर चढ़ने लगती हूँ, साँस फूल जाती है। पाँवों में घाव हो जाते हैं। टाँगे चलने से इनकार कर देती हैं, परन्तु मैं बढ़े जाती हूँ। बढ़े जाती हूँ। रोती हूँ, सिसकती हूँ, पर चलना नहीं छोड़ती। **(तनिक उल्लसित स्वर में)** और मैं उस पहाड़ के शिखर पर जा पहुँचती हूँ। देखती हूँ—सामने पूरब की आँखों में प्रकाश जाग रहा है और नीली-भूरी बदली से सूरज की सुनहली टिकिया निकल रही है।

[माँ प्रवेश करती है।]

हरि—सूरज की टिकिया...

किरण—मैं सहमी हुई सी खड़ी रहती हूँ, किन्तु मेरी नस-नस में नये उल्लास की एक लहर दौड़ जाती है। **(लम्बी साँस लेती है)** मुझे प्रकाश कितना अच्छा लगता है! मुझे जागृति कैसी मनोहर लगती है।

माँ—**(आगे बढ़कर)** शशि जाना चाहती है।

हरि—ठहरो! **(किरण से)** तुमने पहाड़ सर कर लिया है **(माँ और बहिन दोनों को सुनाकर)** किरण ने पहाड़ सर कर लिया है। **(फिर किरण से)** इस लम्बी बीमारी की समस्त पीड़ा और कष्ट तुम बड़ी सफलता से सहन करती आई हो। **(सुख की लम्बी साँस लेता है)** तुम्हारा यह स्वप्न कितना उल्लास-जनक है, कितना सान्त्वनापूर्ण है! और देखो तुम प्रकाश में हो—कितना निखरा धुला प्रकाश फैला है!

सामने मन्दिर की दीवारें इस पूर्णमासी के चाँद की पवित्र ज्योत्स्ना में किसी स्वर्ग के मन्दिर की याद दिला रही हैं।

किरण—(**आकांक्षा भरे स्वर में**) मुझे सहारा देकर बैठा दो। मुझे सहारा देकर बैठा दो—मैं खिड़की से मन्दिर को देखना चाहती हूँ। कितनी बार अपने सपनों में, मैं इसकी चौखट से सिर पटकती रही हूँ। इसके अन्दर जाने का प्रयास करती रही हूँ। (**दीर्घ निश्वास छोड़ती है**) मैं इसके अन्दर जा भी सकूँगी या नहीं ?

हरि—तुम अवश्य जाओगी। तुमने उस काले भयानक जंगल में मार्ग बना लिया तो क्या तुम इस मन्दिर के जर्जर किवाड़ों को पार न कर सकोगी ? तुम अवश्य इसके अन्दर जाओगी। हम दोनों साथ-साथ जाएँगे।

किरण—मुझे सहारा देकर बैठा दो। मैं इन पहाड़ियों को देख लूँ, इस मन्दिर को देख लूँ।

हरि—अभी परसों तुम्हारे नासूर को पलास्टर लगाया गया है।

[**मनोहर तेज़-तेज़ प्रवेश करता है, परन्तु पास आकर चुप-चाप खड़ा हो जाता है।**]

किरण—मुझे लगता है जैसे मेरे नासूर को आराम आ रहा है। मुझे बैठा नहीं सकते तो मेरी चारपाई के नीचे सरहाने की ओर ईंटें ही रखदो। (**अरमान भरी सोईसोई आवाज़ में**) चारपाई खिड़की जितनी ऊँची हो जाएगी और मैं लेटे-लेटे सब कुछ देख सकूँगी। (**लम्बी साँस लेती है**) न जाने क्यों, मेरा जी बाहर जाने को, पहाड़ी के पेड़ों में घूमने को, मीनार पर जा चढ़ने को व्यग्र हो रहा है।

[**आँखें बन्द कर लेती है।**]

हरि—तुम्हारे नासूर को आराम आ रहा है...

मनोहर—खाक आ रहा है, तुम देख नहीं रहे वह अचेत हो गई है, तुम क्यों उसको, अपने-आपको, दूसरों को धोखा दिये जा रहे हो। तुम कहते हो नासूर भर रहा है। मैं कहता हूँ उसका सारा शरीर नासूर बन गया है। यह अब कभी न भरेगा। चार साल—चार लम्बे साल—कल्पना ही से मेरी आत्मा तक काँप जाती है। और यह चार-पाई से हिली तक नहीं। धीरे-धीरे इसकी भरी हुई देह दुर्बल होती-होती हड्डियों का पिंजर रह गई। इसकी टाँगें सूखते-सूखते लकड़ी बन गईं और तुमने ये ईंटें फिर इसके टखनों से बाँध दी हैं ..

हरि—(**मनोहर की बात का उत्तर न देकर रूपा से**) रूपा ज़रा बाहर से दो चार बड़ी ईंटें उठा लाओ।

मनोहर—अब इन पलास्टरों और डाक्टरों से इसको मुक्ति दो। इसके टखनों से यह बोझ काट दो। इसे अन्तिम घड़ियों में तो आराम लेने दो—तुम कितने निर्दयी हो कि इसकी इस बीमारी में भी रस लेते हो।

हरि—मनोहर ! तुम कहते क्या हो ?

मनोहर—यह रस लेना नहीं तो और क्या है ? तुम इसकी पीड़ा में आनन्द पाते हो। इसके दुःख से प्रेरणा पाकर वेदनामयी कविताएँ करते हो और फिर उन्हीं के अवसाद में डूबे रहते हो। तुम्हारा यह विचित्र रस पान.....

हरि—मनोहर तुम पागल हो गये हो !

मनोहर—मैं चार साल से देख रहा हूँ, किसी दूसरे के घर में यह अब तक कब की समाप्त हो चुकी होती—रीढ़ की हड्डी का

असाध्य नासूर—लेकिन तुमने इसको इतना खींचा, इतना खींचा—इंजेक्शन दे-देकर, पलास्टर चढ़ा-चढ़ाकर, ईंटें बाँध-बाँधकर और इसकी इस असह्य पीड़ा से तुम अपनी कविताओं के लिए प्रेरणा हासिल करते रहे।

[रूपा ईंटें ले आती है।]

हरि—इधर दो!

(रूपा से ईंटें लेकर चुप चाप पलंग के नीचे रखता है)

मनोहर—तुम इसकी पीड़ा का अनुमान नहीं कर सकते, तुम शशि की पीड़ा का अनुमान नहीं कर सकते, तुम मेरी पीड़ा का अनुमान नहीं कर सकते? ये ईंटें इसके पाँवों ही में नहीं, उसके पाँवों में भी बँधी हैं और मेरे पाँवों में भी; ये सुइयाँ इसको ही नहीं चुभतीं, उसको भी चुभती हैं और मेरे दिल में भी कचोके लेती हैं और यही सूखकर काँटा नहीं हो रही, वह भी हो रही है और मैं भी!—तुमने किरण के शरीर का बीमार लहू...

हरि—तुम पागल हो गये हो, ईर्ष्या और आसक्ति ने तुम्हें अन्धा कर दिया।

मनोहर—तुमने यह जाल इस चालाकी से बुना है कि शशि इसमें फड़फड़ाती रहेगी निकल न सकेगी!

हरि—मनोहर!

मनोहर—मैं कहता हूँ.....

हरि—तुम देखते नहीं किरण की दशा कितनी शोचनीय है! वह मरने को है और तुम अपनी इन विष में बुझी हुई बातों से मेरा हृदय छलनी करने आये हो।

मनोहर—तुम शशि को न अपनाते हो न छोड़ते हो, और मैं त्रिशंकु की भाँति बीच ही में लटका हुआ हूँ...तुम्हारी इस विरक्ति में, मैं जानता हूँ, कितनी आसक्ति छिपी हुई है—वाह रे अन्यमनस्कता ! वह बनारस से तुम्हें मिलने के लिए आई है, वह जब से बैठी है तुमसे मिलने को व्यग्र है—खेल में वह योग नहीं दे रही, बात-चीत में वह योग नहीं दे रही—और तुम पल भर को उससे बात करने नहीं आ सके...

हरि—किरण की दशा शोचनीय है, तुम्हारे क्या आँखें नहीं हैं !

मनोहर—वह फड़फड़ाती रहेगी, न जियेगी, न मरेगी, किरण की सूखती हुई बीमार देह का लहू अपनी कविताओं के द्वारा तुमने शशि के शरीर में डाल दिया है।

[**किरण हाथ हिलाती है**]

हरि—(**क्रोध से**) तुम जाओ। तुम सब चले जाओ। यह होश में आ रही है।

किरण—(**सोये सोये से, डरे-डरे से क्षीण स्वर से**) मैं चिक नहीं चाहती। चिक नहीं चाहती। मेरी रोशनी बन्द न करो। मेरी रोशनी...

हरि—(**उसके मुँह में दवा टपकाता हुआ**) कौन तुम्हारी रोशनी बन्द करता है ? यह देखो—चिक उठी हुई है और चाँद की पवित्र, स्निग्ध, ज्योत्स्ना तुम्हारे साथ खेल रही है। मैंने तुम्हारी चारपाई के नीचे ईंटे रख दी हैं। उठो देखो—

माँ—यह न उठेगी। देख नहीं रहे इसके हाथ मुड़ रहे हैं। इसे धरती पर उतार लो।

हरि—नहीं, मैं इसे धरती पर न लिटाने दूँगा—निर्मम, निर्दय, ठंडी धरती पर.....

किरण—मेरी रोशनी बन्द न करो। मेरी रोशनी बन्द न करो.....

हरि—कौन तुम्हारी रोशनी बन्द करता है?

किरण—शशि मेरी रोशनी बन्द कर रही है।

[चिक आप से आप गिर जाती है। कमरे में फिर अँधेरा हो जाता है। केवल दिये का प्रकाश है।]

हरि—शशि?

किरण—(जैसे दूसरी दुनिया से) वह मेरी रोशनी बन्द करने के लिए गहरा नीला टाट रँग रही है। मैं चिक नहीं चाहती। मैं चिक नहीं चाहती। मेरी रोशनी...

[आँखें बन्द कर लेती है।]

हरि—(चिक उतार कर फेंक देता है) मैंने चिक उतार दी है... किरण...किरण.....

माँ—(नाड़ी देखते हुए) किरण कहाँ, किरण खत्म हो गई। मैंने कहा था न इसे धरती पर उतार लो।

(राधे दरवाजे से झाँकता है।)

राधे—शशि ने पूछा है मैं यहाँ आ सकती हूँ?

हरि—(उन्माद के स्वर में) वह नहीं आ सकती। वह कभी नहीं आ सकती। देखते नहीं मैंने चिक उतार दी है। मैंने चिक उतार कर फेंक दी है.....

[पर्दा सहसा गिर पड़ता है।]

चमत्कार

पात्र

तुर्की टोपी वाला

लम्बी चोटी वाला

कृपाण वाला

घंटी वाला

श्वेत डाढ़ी वाला

और

अन्य राह चलते लोग

स्थान

एक बड़े नगर का एक बड़ा बाज़ार

समय

दिन

[रंग मंच के बायें कोने में बाइबिल सोसाइटी का महराबदार दरवाज़ा है। महराब के ऊपर सुन्दर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है :

"यीसू मसीह ने कहा, उठ और कुमारी उठ बैठी।"

यह बाइबिल सोसाइटी एक बड़े खुले बाज़ार में है। रंग मंच के दायें कोने में बाइबिल सोसाइटी के साथ की दुकान का आधा बोर्ड (जिस पर उप्पल एंड— लिखा हुआ है) और दरवाज़े का आधा भाग साफ़ दिखाई देता है। बाइबिल सोसाइटी और उप्पल एंड कम्पनी की सीमाएँ स्टेज के मध्य आकर मिलती हैं। बाइबिल सोसाइटी की बिल्डिंग का रंग लाल है और दूसरी दुकान का मोतिया। दोनों दुकानों के आगे फुटपाथ है, जिस पर बिजली का एक खम्बा भी उप्पल एंड कम्पनी के सामने दिखाई देता है। फुटपाथ के इस ओर बायें से दायें अथवा दायें से बायें को जानेवाली तारकोल की सड़क है।

पर्दा उठने पर बाज़ार साधारण रूप से चलता दिखाई देता है। लोग अपने ध्यान में मग्न उधर से इधर और इधर से उधर आ-जा रहे हैं। एक फ़ैशनेबुल लेडी उप्पल एंड कम्पनी के दरवाज़े में प्रवेश करती है। एक डाकिया बाइबिल सोसाइटी के दरवाज़े में से बाहर आता है।

कुछ क्षण बाद बायीं ओर से एक पतला-दुबला व्यक्ति सिर पर तुर्की टोपी रखे, गले में खुले गले की मैली-फटी कमीज़ और कमर में टख़नों से ऊँचा, क़दे तंग, घुटनों पर (निरन्तर पहनते रहने के कारण) कुछ आगे को बढ़ा हुआ उटुंग पायजामा पहने, सिगरेट के एक ख़ाली टीन के बक्स को रस्सी से खींचता हुआ प्रवेश करता है और दोनों दुकानों के मध्य आ खड़ा होता है।

निमिष भर के लिए वह राह-चलते लोगों को देखता है, फिर ऊँचे स्वर से बाइबिल सोसाइटी के दरवाजे पर लिखे हुए मोटो (Motto) को पढ़ता है।]

तुर्की टोपी वाला—यीसू मसीह ने कहा—उठ ! और कुमारी उठ बैठी। (सोसाइटी के दरवाजे की ओर देखकर) बुलाओ अपने यीसू मसीह को कि मेरी इस मुर्दा मछली को ज़िन्दा करे। (फिर दाँत पीसते हुए मुँह चिढ़ाकर और राह चलतों को सुनाकर) यीसू मसीह ने कहा—उठ ! और लड़की उठ बैठी। (फिर दरवाजे की ओर देखकर) बुलाओ अपने उस मसीह को कि इस मुर्दा मछली को जिलाए।

[उसकी आवाज़ सुनकर तीन-चार राह चलते इकट्ठे हो जाते हैं, जिनमें एक लम्बी चोटी वाला भी है।]

तुर्की टोपी वाला—मसीह की सबसे बड़ी करामात यह थी कि वह मुर्दों को ज़िन्दा कर देते थे। उन्होंने जेरस की मुर्दा बेटी को छुआ और वह उठ बैठी। तो क्यों आकर मेरी इस मुर्दा मछली को नहीं जिलाते ? (दरवाजे की ओर देखकर) निकालो अपने उस मसीह को कि मेरी इस मुर्दा मछली को ज़िन्दा करे।

[कुछ और लोग आ जाते हैं, जिनमें एक कृपाण वाला भी है]

लम्बी चोटी वाला—(**आगे बढ़कर**) क्यों भई क्या बात है ?

तुर्की टोपी वाला—"अल मुबलग़" में मैंने एक मार्के का मज़मून लिखा था, जिसमें ईसाई धर्म की बुनियादी ख़ामियों पर दलील के साथ बहस की थी। मेरे इस लेख का कोई माकूल[1] जवाब देने के बदले (**सोसाइटी के दरवाज़े की ओर देखकर**) पादरी बधावा राम ने अपने अखबार में रसूले पाक की करामातों पर एतराज[2] किया है। मेराज[3] की असलियत को समझना पादरी बधावाराम के बस की बात नहीं। कौन नहीं जानता कि ख़ुदावन्दे करीम ने अपने रसूल को सातों आसमानों की सैर कराई और वह भी इतने कम अर्से में कि जिस दरवाज़े से रसूले पाक गये थे उसकी कुण्डी उनके वापस आने पर अभी हिल रही थी। इस मोजज़े[4] के कई मतलब निकल सकते हैं, लेकिन उन पर ग़ौर[5] करने के बजाय पादरी बधावा राम ने ओछे और लग़व[6] एतराज़ किये हैं।

कृपाण वाला—पर मियाँ, इस टीन के डिब्बे में क्या है ?

तुर्की टोपी वाला—मछली।

कृपाण वाला—मछली !

तुर्की टोपी वाला—हाँ मुर्दा मछली ! मैं पादरी बधावा राम को चैलेंज देने आया हूँ कि अगर सचमुच योसूमसीह में यह ताकत थी कि वह मुर्दों को ज़िन्दा कर देते थे और अगर सचमुच वह खुदा के बेटे थे,

---

१ माकूल = युक्तियुक्त, जिसे अक्ल क़बूल करे। २ एतराज़ = आपत्ति। ३ मेराज = मुहम्मद साहिब का एक चमत्कार। ४ मोंजज़ा = चमत्कार। ५ ग़ौर करना = सोच विचार करना। ६ लग़व = लग़ो = लचर।

तो पादरी बधावा राम अपने उस खुदा के बेटे को बुलाए कि वह आकर मेरी इस मुर्दा मछली को जिलाए और अपनी मसीहाई[1] का सबूत दे।

लम्बी चोटी वाला—पादर बधावा राम! (चोटी पर हाथ फेरता हुआ, हँसते हुए अपने पास खड़े एक दूसरे लम्बी चोटी वाले साथी से) अरे! यह वही बधावाराम है जिसे हमने शुद्ध किया था; परन्तु जो हमारे कठिन सिद्धान्तों पर पूरा न उतर सका था।

[पादरी बधाबाराम सोसाइटी के दरवाज़े से झाँकते हैं।]

—(पादरी की ओर देखकर) हाँ पादरी साहिब, बुलाइए अपने खुदा के बेटे को कि वह अपना चमत्कार दिखाकर इस मृत मीन को पुनः जीवन प्रदान करे (लोगों को सुनाकर) यदि भगवान् अमर और सर्वव्यापक हैं तो भगवान का पुत्र अमर और सर्वव्यापक क्यों न होगा और क्यों न यहाँ आकर इस मृत-मत्स्य में अपने परस से जीवन का संचार करेगा।

[कुछ और लोग भीड़ में आकर सम्मिलित हो जाते हैं। श्वेत डाढ़ी वाला एक वृद्ध चुपचाप भीड़ के एक ओर खड़ा तमाशा देखने लगता है।

एक हाथ में बैग उठाए और दूसरे में घंटी लिए एक व्यक्ति सबसे पीछे आकर खड़ा हो जाता है।]

तुर्की टोपी वाला—(घंटीवाले को देखकर नारा लगाता है) आये खुदा का बेटा और मेरी इस मुर्दा मछली को ज़िन्दा करे।

(पादरी बधावा राम फिर अन्दर चले जाते हैं)

लम्बी चोटी वाला—(शिखा पर हाथ फेरते हुए) एक सभा में

---

१ मसीहाई = मसीहा की शक्ति अर्थात मुर्दों को जिलाने की शक्ति।

पादरी बघावा राम ने आर्य-समाजियों को मूल-पंथी कहा था—चूहे को शिव-लिंग पर से प्रसाद उड़ाते हुए देखकर महर्षि को जो स्वर्गिक प्रेरणा मिली थी, उसका उपहास उड़ाते हुए उनके व्यक्तित्व की निन्दा की थी (भाषण देने के अन्दाज़ में हवा में हाथ घुमाते हुए और एड़ियाँ उठाते हुए) महर्षि दयानन्द पूर्ण ब्रह्मचारी थे, उनके मुख पर अद्भुत, अलौकिक तेज और उनके अंगों में अपार शक्ति थी। अपने योगबल से वे ऐसी आश्चर्य-जनक बातें कर सकते थे, जो दूसरों को चमत्कार मालूम होती थीं। जालंधर में टिक्का साहिब की गाड़ी को उन्होंने पीछे से पकड़ लिया। घोड़े शक्ति लगाकर थक गये। लेकिन वह तो ब्रह्मचारी का बल था, टस से मस न हुई गाड़ी। चमत्कार यह होता है। इसे बुद्धि स्वीकार करती है, परन्तु.....।

कृपाण वाला—(जोश से आगे बढ़कर) इन्हीं पादरी साहिब ने हमारे बाबा साहिब बाबा गुरु नानक के चमत्कारों पर भी आलोचना की थी और मोदी खाने की बात को लेकर मज़ाक उड़ाया था। वे तो सत्यावान* पुरुष थे। ननकाना साहिब के लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। गुरु साहिब के बहनोई जय गोपाल लोधी सुल्तान के यहाँ नौकर थे। सच्चे पादशाह† के पिता कालूराम ने अपने पुत्र को आवारा समझ कर जय गोपाल से कहा—"भई यह तो साधु-सन्तों की संगति में रहकर आवारा और निकम्मा हो रहा है। इसे कहीं ठिकाने पर बिठाओ।" जय गोपाल ने सच्चे पादशाह की सिफ़ारिश करके उन्हें मोदी खाने में नौकर करवा दिया। बाबा ठहरे दरियादिल फ़कीर—वे क्या जानते हिसाब किताब, जो भी उनके दरवाज़े पर आता खाली हाथ न जाता, साधु-सन्त, पीर फ़कीर, सब मोदी खाने से मनमानी खैरात पाने

* सत्यावान = शक्तिशाली। † सिक्ख बादशाह को पादशाह कहते हैं।

लगे। होते-होते यह खबर सुल्तान लोधी तक जा पहुँची कि तुम्हारा तो मोदीखाना ही लुटा जा रहा है। बस सुल्तान ने जाँच-पड़ताल का आदेश दिया। मोदीखाने का हिसाब होने लगा। गुरु साहिब तराजू लेकर तोलने लगे। एक-दो तीन-चार.....तेरह पर जाकर रुके, आगे गिनने के बदले उन्होंने...तेरह...तेरा...मैं तेरा...मैं तेरा का पाठ शुरू कर दिया। सारा मोदीखाना तुल गया और जितना गुरु साहिब के चार्ज में दिया गया था। उससे भी अधिक निकला। (दरवाज़े की ओर देखकर) पादरी बधावा राम एक जलसे में कह रहे थे—यह कैसे सम्भव हो सकता है ? मैं उनसे पूछता हूँ, यीसु मसीह ने किस तरह रोटी के दो टुकड़ों और तीन मछलियों को बरकत देकर उनसे अपनी सहस्रों भेड़ों की भूख मिटाई थी और सब के खा चुकने पर भी छः टोकरे भर रोटियाँ और मछलियाँ बच रही थीं ?

तुर्की टोपी वाला—(नारा लगाता है) आये मसीह और मेरी इस मुर्दा मछली को ज़िन्दा करे !

घंटी वाला—(घंटी बजाता और भीड़ को चीर कर आगे आता हुआ) मैं मछली ज़िन्दा करता हूँ ! मैं मछली ज़िन्दा करता हूँ !!

(लोग चकित से उसकी ओर देखते हैं)

—(पूर्ववत घंटी बजाता और आगे बढ़ता हुआ) मैं मछली ज़िन्दा करता हूँ ! मैं मछली ज़िन्दा करता हूँ !!

[भीड़ के मध्य आकर यही आवाज़ लगाता हुआ घूमता है, जिससे एक छोटा सा गोल घेरा बन जाता है। तुर्की टोपी वाले मियाँ साहिब और घंटी वाले महोदय इस घेरे के मध्य रह जाते हैं।

घंटी वाले ने महीन मलमल का कुर्ता पहन रखा है, जिसमें से बनयान

झलक रही है। कमर में महीन धोती बाँध रखी है। पाँव में बढ़िया चमचमाते पम्प शू हैं। शरीर हृष्ट-पुष्ट और मूँछें लम्बी और नोकों पर ऊपर को मुड़ी हुई हैं। आँखों में ऐसी चमक है जो उसके चातुर्य का पता देती है। उसकी तुलना में तुर्की टोपी वाला मात्र एक भिखारी दिखाई देता है।

घंटी वाला घेरे के मध्य अपना बैग रख देता है और एक बार फिर घंटी बजाता हुआ घेरे में चक्कर लगाता है]

घंटी वाला—मैं मछली ज़िन्दा करता हूँ, मैं मछली ज़िन्दा करता हूँ, मैं मछली ज़िन्दा करता हूँ! (क्षण भर केवल घंटी बजाता है) इसी क्षण आपके देखते-देखते इस मछली को, इस मृत मछली को जीवित कर दूँगा, केवल मुझपर भरोसा रखिए—मुझपर विश्वास रखिए!

श्वेत डाढ़ी वाला—(जैसे अपने आप से) हम लोगों में विश्वास ही का तो अभाव है।

घंटी वाला—(एक बार फिर घंटी बजाता हुआ) लेकिन मेहरबान इससे पहले कि मैं इस मरी हुई मछली को जिलाऊँ, मैं मरे हुए इन्सानों में जान डालना चाहता हूँ। मेहरबान, मनुष्य उस परमात्मा, उस वाहे गुरु*, उस खुदा की सृष्टि में सब से बड़ी, सबसे उत्तम रचना है। उसके प्राण सहस्रों—सहस्रों ही नहीं, लाखों मछलियों के प्राणों से मूल्यवान है। मछली को जिलाने से पहले मैं उन मृत-प्रायः इंसानों को ज़िन्दा करना चाहता हूँ।

कृपाण वाला—इन्सानों को!

घंटी वाला—मेहरबान! आज ज़िन्दा इन्सान कहाँ हैं? सौ में से किसी एक के चेहरे पर जीवन की झलक दिखाई देगी—पीले

---

* वाहे गुरु = सिक्ख परमात्मा को वाहे गुरु कह कर पुकारते हैं।

ज़र्द चेहरे, थकी उदास आँखें, सूखे सड़े ठठरी से शरीर ! ये जीते-जागते इन्सान हैं ! मेहरबान, ये चलते-फिरते मुर्दे हैं—वह दमख़म, वह बल-वीर्य, वह साहस और हिम्मत अब कहाँ है ! (घंटी बजा कर) और मेहरबान ऐसा क्यों न हो ? आज वही चीज़ें हमारी पहुँच से बाहर हैं जो हमारे जीवन के लिये अत्यधिक ज़रूरी हैं। (और भी ऊँचे स्वर में छाती पर हाथ रखते हुए) मेहरबान! कितने लोग हैं जो सीने पर हाथ रख कर कह सकते हैं कि वे पवित्र दूध और घी प्रयोग करते हैं। ख़ालिस दूध-घी जनता के लिए ऐसी नियामत बन गया है, जिसका पाना परलोक में सम्भव हो तो हो, इस लोक में तो नहीं।

श्वेत डाढ़ी वाला—सच है भाई, सच है !

[बाज़ार चलता रहता है, कुछ लोग आते और कुछ जाते रहते हैं।]

घंटी वाला—दूध-घी दूर, हमें तो स्वच्छ जलवायु भी प्राप्त नहीं। यह मछली मुर्दा है। क्यों ? इसलिए, कि यह पानी के बाहर है। इसे इसका भोजन प्राप्त नहीं। हममें से अधिकांश जीते जी मुर्दा हैं। क्यों ? इसी लिये कि हमें हमारी खुराक प्राप्त नहीं। गाँवों में जाइए। अब भी आप को छः छः सात-सात फुट ऊँचे, ३७-३७ इंच चौड़े सीनों वाले जवान मिलेंगे। स्वच्छ वायु, पवित्र दूध-घी और निर्मल पानी—कौन है माई का लाल जो सीने पर हाथ मार कर इस बात का दावा कर सकता है कि उसे ये सब प्राप्त हैं।

[श्वेत दाढ़ीवाले वृद्ध प्रभावित होकर सिर हिलाते हैं कि ठीक है भाई तू जो कह रहा है सच कह रहा है।]

घंटी वाला—(घंटी को फिर एक बार बजाता हुआ) लेकिन मेहरबान ! यह ग़रीब जानवर अपनी मौत का आप ज़िम्मेदार नहीं।

इसे तो मियाँ साहिब नदी से पकड़ लाए हैं। इसका बस चलता तो यह अपने हाथों अपने जीवन को न जाने देता, किन्तु ये हमीं मनुष्य हैं जो अपने हाथों अपने जीवन को, जीवन के अमूल्य सार को, अपने हाथों अपने बचपन या जवानी में गँवा देते हैं। मेहरबान! जो भोजन हम खाते हैं उसका रस बनता है, रस से रक्त, रक्त से माँस, माँस से चरबी, चरब से हड्डी, और हड्डी से गूदा और इस गूदे से वह जौहर बनता है जिससे हमारे मन-मस्तिष्क को शक्ति मिलती है। जिससे पुरुष पुरुष कहलाता है। यही वह रत्न है जो हम अपनी मूर्खता से अपने बचपन अथवा युवावस्था में अपने हाथों खो देते हैं और चलते-फिरते मुर्दे दिखाई देते हैं। इस बात का श्रेय श्री गुरु महाराज श्री १०८ स्वामी आलोकानन्द जी वैद्यराज को है कि उन्होंने जवानी के इस सार को क़ायम रखने और पुरुष को फिर से पुरुष बनाने के लिए वह नुस्खा हासिल किया है जिसके सेवन से मरे से मरा मनुष्य भी जवानी की अँगड़ाई लेकर जाग उठता है।

(फिर घेरे में चक्कर लगाता है)

—मैं मछली ज़िन्दा करता हूँ! मैं मछली ज़िन्दा करता हूँ!!

(फिर अपने स्थान पर खड़े होकर घंटी बजाते हुए) मियाँ साहिब इस मछली को मेरे सामने ले आइए।

(मियाँ साहिब बक्स को खींच कर उसके सामने लाते हैं)

—हाँ मेहरबान, इस मैदान में इस मछली को रख दीजिए! मैं पलक झपकते, आप के देखते देखते, इसे जीवित कर दूँगा। ऐसी-ऐसी औषधियाँ गुरु महाराज ने तैयार कीं कि प्रायः मरते मरते लोग उठ खड़े हुए। साँप काटे की एक अचूक औषधि मेरे पास है। मालवे और माझे के ऊसर इलाक़ों में बीसियों हृष्ट-पुष्ट जाट हर साल साँपों

का शिकार हो जाते थे। गुरु महाराज के आदेश पर मैंने एक बार वहाँ जाकर दवा बाँटी। क्या मजाल जो पिछले दस वर्ष में साँप काटे से एक भी मौत उन इलाकों में हुई हो (**बैग से एक नीली सी टिकिया निकालता है**) मेहरबान! जिस तरह लोहा लोहे से कटता है, उसी प्रकार विष का प्रभाव भी विष ही से दूर होता है। गुरु महाराज कहा करते थे—विष के मारने को विष महाबली है—इसीलिए उन्होंने कई तरह के ज़हरों को साँप के विष में खरल करके, दिन रात के परिश्रम के बाद, यह टिकिया तैयार की। जहाँ कहीं साँप, बिच्छू, कनखजूरा, मधुमक्ख, भिड़ या कोई दूसरा विषैला जानवर काट जाए, थूक अथवा पानी में घिस कर इसे लगा दीजिए। मिनटों में ज़हर का असर दूर हो जायगा। (**घंटी बजाता हुआ**) जिस भाई को ज़रूरत हो हाथ खड़ा करे। गुरु महाराज ने कहा था—बेटा जीवन देना, पर दाम न लेना! इस टिकिया का मूल्य लेना मेरे लिए महापाप है! (**बैग से चन्द और टिकियाँ निकालता है**) जिस जिस भाई को आवश्यकता हो हाथ खड़ा करे!

[**टिकिया बाँटने लगता है। धीरे-धीरे सबके सब हाथ खड़े कर लेते हैं।**]

—(**रुक कर**) आप सब लोगों ने हाथ खड़े कर दिए? (**छोटे छोटे दो लड़कों की ओर देख कर**) यह कोई मिठाई की टिकिया नहीं, ज़हर की टिकिया है।

[**लोग हँसते हैं—लड़के लज्जित होकर हाथ नीचे कर लेते हैं।**]

—मेहरबान! इस तरह काम नहीं चलेगा। उन लोगों को, जिन्हें दवा की ज़रूरत है, दूसरे लोगों से अलग करने का एक गुर श्रीगुरु महाराज हमें बता गए हैं (**घंटी बजाते हुए**) देखिए मेहरबान! इस

टिकिया का मूल्य चार आने है, मनुष्य के प्राणों का मूल्य लाखों रुपए से भी अधिक है, किन्तु इन प्राणों को बचानेवाली इस टिकिया का मूल्य सिर्फ़ चार आने हैं। गुरु जी ने कहा था—बेटा जीवन देना पर दाम न लेना। मित्रो! यह चार आने दाम नहीं, यह केवल लागत है।—इस टिकिया की कीमत सिर्फ चार आने है, अब जिन महाशयों को ज़रूरत हो हाथ खड़े करें।

[कुछ लोग हाथ गिरा देते हैं, कुछ इस असमंजस में हैं कि हाथ खड़ा रखें या न रखें। उन्हीं को सम्बोधित करके...]

—चार आने। इस टिकिया के दाम मात्र चार आने हैं। जिन्हें ज़रूरत हो सिर्फ वही हाथ खड़ा रखें।

[केवल पाँच-छः व्यक्ति हाथ खड़ा रखते हैं, शेष गिरा देते हैं।]

—लाइए जनाब चार-चार आने! (पैसे इकट्ठे करते हुए) लेकिन हाथ खड़े रखिएगा मेहरबान।

[सब पैसे इकट्ठे कर लेता है और एक विचित्र उदारता से मुस्कराता है।]

—(हाथ के पैसों को देखते हुए) देखिए जिन मेहरबानों को ज़रूरत थी उन्होंने मूल्य देकर भी दवा खरीद ली। मित्रो! आपको सचमुच ज़रूरत है। लीजिए पैसे भी लीजिए और दवाई भी लीजिए।

[जिन-जिन लोगों ने पैसे दिये थे, उनको पैसे और टिकिया दोनों चीज़ें वापस कर देता है।]

—(फिर अपनी जगह आकर उसी उदार मुस्कान के साथ) गुरु महाराज ने कहा था—पुत्र, जीवन देना पर दाम न लेना! (ज़ोर से घंटी बजाते हुए) हाँ तो मियाँ जो आप ही इस मछली को लाए हैं न?

तुर्की टोपी वाला—जी, मैं ही लाया हूँ।

घंटी वाला—ज़िन्दा लाए थे या मुर्दा ?

तुर्की टोपी वाला—मुर्दा !

घंटी वाला—(एक विचित्र आत्म-विश्वास के साथ) देख लीजिए ज़िन्दा तो नहीं हो गई।

तुर्की टोपी वाला—(मछली को उठाकर फिर वहीं रखते हुए) नहीं जी मुर्दा है।

घंटी वाला—(भीड़ को सम्बोधित करके) मेहरबान ! गुसाईं तुलसीदास जी कह गए हैं—"जो गुरु मिले बिरंच सम मूरख हृदय न चेत"—कारण क्या है मेहरबान ! यही कि मूर्ख को अपनी बात के अतिरिक्त किसी दूसरे की बात पर विश्वास नहीं होता और "अक़्ल मंदाँ रा इशारा काफ़ीस्त।"* (घंटी बजाता हुआ दायरे में चक्कर लगाता है) विश्वास कीजिए मेहरबान, यह मछली जो इस समय इस टीन के डिब्बे में निस्पन्द और निष्प्राण पड़ी है, जीवन के स्पन्दन से फड़क उठेगी। स्वयं गुरु महाराज अपनी जवानी में एक बार इसी मछली की तरह निष्प्राण हो गए थे। उन्होंने स्वयं एक बार बताया था कि संन्यास लेने से बहुत पहले, बचपन की कुटेवों के कारण, जवानी ही में वे अपने पुरुषत्व का ख़ात्मा कर बैठे थे। हकीमों-डाक्टरों से निराश होकर वे पहाड़ों की ओर निकल गए थे कि सम्भव है उन्हें कोई पहुँचा हुआ संन्यासी मिल जाए तो उन की आशा पूरी हो। सितम्बर १८५२ की बात है मेहरबान ! वे गढ़वाल के प्रसिद्ध नगर करण प्रयाग में पहुँचे। वहाँ एक सराय में उन्हें एक

---

* बुद्धिमानों के लिये इशारा काफ़ी है।

देवता-स्वरूप साधु के दर्शन हुए, जिन्होंने न केवल उन्हें पुनः जीवन दान दिया, बल्कि आयुर्वेद में वह श्रद्धा प्रदान की कि बाद में गुरु महाराज ने जनता की सेवा के हेतु संन्यास धारण कर लिया और हज़ारों बल्कि लाखों रोगियों को शक्तिशाली और वीर्य्यवान बनाकर उन्हें दोबारा जीवन की होड़ में बाज़ी मारने के योग्य बना दिया। (बाइबिल सोसाइटी की महराब पर लिखे हुए वाक्य को देखकर) यीसू मसीह ने कहा उठ और कुमारी उठ खड़ी हुई! शायद उनके हाथ में, उनके परस ही में मसीहाई थी, उनके छूने ही से मुर्दे जी उठते थे, लेकिन यह भी कौन कह सकता है कि उनके पास कोई ऐसी ही अचूक औषधि न होगी जिससे मुर्दे तक जीवित हो उठें। ऐसी ही औषधि उस बर्फ़ सी सफ़ेद डाढ़ी वाले बूढ़े साधु ने गुरु महाराज को प्रदान की। (बैग से सुनहरी गोलियों की एक शीशी निकालता है) यह वह अचूक औषधि है! (घंटी बजा कर) गढ़वाल की यात्रा की याद में गुरु महाराज ने इनका नाम "गढ़वाली गोलियाँ" रखा है। इन गोलियों के सेवन से स्वयं गुरु महाराज न केवल १०५ वर्ष तक जीवित रहे, बल्कि वृद्धावस्था में भी जवानों से अधिक शक्ति रखते थे, उनकी आँखों की ज्योति इतनी तीक्ष्ण थी कि दस फुट तो क्या बीस फुट के फ़ासिले से चार्ट पढ़ सकते थे और उनकी बतीसी मरते दम तक क़ायम रही। (ज़ोर-ज़ोर से घंटी बजाता है।) न केवल यह, बल्कि गुरु महाराज ने असली नुस्खे में और कई औषधियाँ मिलाकर इसे सब तरह की कमज़ोरियों के लिए लाभदायक बना दिया है। सिर या शरीर में चोट लग जाए और मनुष्य दुर्बलता महसूस कर रहा हो, आँखों में अँधेरा छाया जा रहा हो और बेहोशी की हालत तारी हो—मेहरबान! गर्म दूध में एक गोली घोल कर दीजिए, तत्काल शक्ति की लहर-सी शरीर में दौड़ जाएगी! काम के आधिक्य या ग़िज़ा की कमी के

कारण दिमाग़ कमज़ोर हो गया हो; रात को नींद न आती हो; स्मरण-शक्ति मंद पड़ गई हो; चीज़ें रखकर भूल जाते हों; मस्तक में हल्की-हल्की पीड़ा रहती हो; स्नायु कमज़ोर हो गए हों—सात दिन प्रातःसायं दूध के साथ इन गढ़वाली गोलियों का सेवन कीजिए और फिर देखिए कि यह औषधि मसीहाई का असर रखती है या नहीं। फिर वे लोग जो अपने बचपन या जवानी में अपनी नादानी से अपने जीवन का अमूल्य रत्न गँवा बैठे हों; जिन्हें जीवन से, सौन्दर्य से उपेक्षा हो गई हो; जो लज्जावश किसी से अपने दिल की बात न कह सकते हों; कमज़ोरी का घुन जिन्हें अन्दर ही अन्दर खाए जाता हो; यदि २१ दिन तक प्रातः सायं इस टॉनिक का प्रयोग करें तो उनकी नसों में जीवन का रक्त बाढ़ पर आई हुई नदी की तरह दौड़ने लगेगा, इतना कि संयम से काम लेना उनके लिये कठिन हो जाएगा। उनकी सब शिथिलता दूर हो जाएगी। जीवन उन्हें सुन्दर और प्रिय लगेगा और जीने को उनका जी चाहेगा (बैग से और शीशियाँ निकालते हुए) गुरु महाराज का कथन है—बेटा जीवन देना पर दाम न लेना। मेहरबान! मेरे पास इस रसायन की केवल कुछ शीशियाँ ही शेष रह गई हैं। जिन भाइयों को ज़रूरत हो, हाथ उठाएँ!

(बहुत से लोग हाथ उठा देते हैं)

—(हँसता है) आप सब लोगों को ज़रूरत है। काश मेरे पास इतनी शीशियाँ होतीं! आप लोगों में से जिनको अत्यधिक आवश्यकता हो, वही हाथ खड़ा रखें। नहीं किसी को भी न मिलेगी।

(कुछ हाथ गिर जाते हैं)

—(एक दृष्टि उठे हुए हाथों पर डाल कर) नहीं, अभी नहीं!

मित्रो, मेरे पास बहुत कम शीशियाँ हैं। जिन्हें बेहद ज़रूरत हो वही हाथ खड़े रखें।

(दो चार हाथ और गिर जाते हैं)

—मेहरबान ! मुझे गुरु महाराज का बताया हुआ गुर आज़माना पड़ेगा। ज़रूरत वालों को दूसरों से अलग करने का ढंग गुरु महाराज ने मुझे बता रखा है (**घंटी को एक बार ज़ोर-ज़ोर से बजा कर**) इस जीवनदायिनी दवा की एक शीशी का मूल्य एक रुपया है—एक पखवारे की दवा—तीस गोलियाँ इस शीशी में बन्द हैं। अब जिस भाई को ज़रूरत हो हाथ खड़ा करें।

(कुछ हाथ गिर जाते हैं)

—एक रुपया ! इस जीवनदायिनी औषधि की कीमत सिर्फ़ एक रुपया !! (**एक देहाती नवयुवक से**) क्यों बे तेरे पास रुपया है ?

(खिसियानी-सी हँसी के साथ नवयुवक हाथ नीचे कर लेता है।)

—(**शेष को गिनता हुआ**) एक दो तीन चार...दस ! ओह ! शीशियाँ मेरे पास केवल नौ हैं। (**चोटी वाले से**) क्यों ब्रह्मचारी जी आप को क्या आवश्यकता पड़ गई ?

चोटी वाला—(**खिन्न होकर**) मेरे एक मित्र को चाहिए।

घंटी वाला—(**जैसे अपने आप से**) गुरु महाराज ने कहा था—बेटा जीवन देना पर दाम न लेना। (**ज़ोर से**) यह एक रुपया इन गोलियों की कीमत नहीं, सिर्फ़ लागत है। गढ़वाल के पहाड़ों से अनमोल जड़ी-बूटियां मँगा कर यह दवाई तैयार की गई है। जनता के लाभ हेतु इसे मात्र लागत पर बाँटा जा रहा है (**एक बार ज़ोर से घंटी बजाता हुआ दायरे में चक्कर लगाता है**) जीवनदायक, शक्तिवर्द्धक,

इन तीस गोलियों का मोल केवल एक रुपया है (क्षण भर चुप खड़ा रहता है) मैं फिर एक बार कहता हूँ, इस बार रुपया वापस न किया जाएगा।

(कोई हाथ नीचे नहीं गिरता)

—तो लाइए एक एक रुपया!

(रुपये इकट्ठे करता है)

—जिन मेहरबानों ने रुपया दिया है वे कृपा कर अपने हाथ खड़े रखें (तुर्की टोपी वाले से) मियां जी देखिए इस बैग में अगर एक शीशी और हो (श्रोताओं से) मैंने अपने लिए रख छोड़ी थी, परन्तु गुरु महाराज कहा करते थे—बेटा किसी दूसरे की जान बच रही हो तो अपने प्राणों का मोह न करना।

[मियाँ जी शीशी निकाल लाते हैं और वह सब शीशियाँ बाँट देता है।]

—मेहरबान, मैं आप लोगों का कृतज्ञ हूँ कि आप ने इतना समय मुझे दिया। भगवान से मेरी यही प्रार्थना है कि यह संजीवनी आप को शीघ्रातिशीघ्र स्वास्थ्य लाभ दे।

(बैग उठा कर चलने को होता है)

लंबी चोटी वाला—(शीशी को एक बार इधर उधर से देख कर) परन्तु मुझे तो यह औषधि नहीं चाहिए।

कृपाण वाला—लेकिन भाई वह मछली.....

घंटी वाला—(जाते जाते रुक कर) गढ़वाली गोलियाँ पत्थर तक में जान पैदा कर सकती हैं, फिर मछली तो चीज़ ही क्या है, लेकिन

मेहरबान ! मछली दूध के साथ गोलियाँ नहीं निगल सकती। मियाँ जी ! चलिए, इसे हमारे औषधालय में ले चलिए, वहाँ हम नदी का स्वच्छ जल मँगाएँगे और यदि परमात्मा ने चाहा तो इसे अवश्यमेव जीवन प्रदान करेंगे।

[आगे आगे बैग उठाए घंटीवाला चलता है और पीछे पीछे क्रीतदास की भाँति मियाँ जी हो लेते हैं]

लंबी चोटी वाला—(कुर्ते की आस्तीनें चढ़ाता हुआ) मैं इस लुटेरे को मज़ा चखा दूँगा।

[भवें चढ़ाये उनके पीछे चला जाता है। भीड़ छँट जाती है। रंगमंच पर केवल श्वेत डाढ़ी वाला वृद्ध रह जाता है। कुछ क्षण बाइबिल सोसाइटी के मॉटो को देखता रहता है, फिर जैसे अपने आप मुस्कराता है।]

श्वेत डाढ़ी वाला—विश्वास उत्पन्न करने की आवश्यकता है चमत्कार क्या आज नहीं हो सकते।

(पर्दा सहसा गिर जाता है।)

खिड़की

पात्र

नयना

पारो

लाजो

कासनी

महरी

कुन्दनसिंह

[पर्दा उठने से कुछ क्षण पहले दूर से लड़कियों के गाने का स्वर आता है, जो धीरे धीरे समीप आता जाता है]

पूजन चलो बसन्त सखी री आज,
फागन आया रंग भरिया हे सखि
सरसों फूली री
सखी री आज

गाने के मध्य पर्दा हरियाना (पूर्वी पंजाब) के एक देहाती घर में उठता है। नयना अन्यमनस्क सी अपने कमरे की खिड़की में बैठी बाहर की ओर देख रही है। यद्यपि आज वसन्तोत्सव है, किन्तु उसने सीधे सादे कपड़े पहन रखे हैं। उसकी वसन्ती चुनरी भी एक ओर खूँटी पर लटक रही है। कमरे की सफ़ाई और उसके सामान से पता चलता है कि इस में रहने वाले को पवित्रता और परिश्रम बड़े प्रिय हैं। खूँटियों पर चरखे, घर के बने मूढ़े और अटेरन टंगे हैं। दायीं ओर कोने में कागज़ों के बने डूंगरे रखे हैं। उनके साथ ही धुनकी हुई रुई का ढेर लगा है, जिसके पास कुछ पूनियाँ बटी पड़ी हैं।

बायीं दीवार के कोने में रस्सी पर लिहाफ़ तह किए हुए लटक रहे हैं, दीवारों पर दूसरी देहाती आवश्यकता की चीज़ें व्यवस्था से टंगी हैं। नयना की खिड़की बायीं ओर की दीवार में है, सामने की दीवार के मध्य एक दरवाज़ा है जो बाहर आंगन में खुलता है, पर्दा उठते समय नयना दरवाज़े की ओर पीठ किए अनमनी सी खिड़की के बाहर की ओर देख रही है गाने का स्वर समीप आ जाता है।]

पूजन चलो बसन्त सखी री आज
फागन आया रंग भरिया हे सखि
सरसों फूली री
सखी री आज
घर घर मंगलाचार मदनसिंह
फागन आया रंग भरिया

[अत्यधिक समीप, कदाचित नयना की खिड़की के नीचे आकर गाने का स्वर रुक जाता है और लड़कियों के बुलाने की आवाज़ें आती हैं]

एक आवाज़—नयना ! ओ री नयना !!

दूसरी आवाज़—यहाँ खिड़की में क्या गुम सुम बैठी हो, आओ वसन्त पूजने चलें।

(नयना इनकार में सिर हिलाती है)

तीसरी आवाज़—यह कद्दू सा सिर क्या हिलाती हो, हम स्वयं ऊपर आकर तुम्हें ले चलेंगी।

[कुछ क्षण बाद लाजो, पारो और कासनी भागती हुई सी प्रवेश करती हैं। पारो नयना के पीछे से आकर उसकी आँखें बन्द कर लेती है।]

नयना—(हाथ हटाने का प्रयास किए बिना) तंग न करो पारो।

पारो—(हाथ छोड़कर उसे कन्धों से हिलाते हुए) चलो न, यहाँ क्या गुम-सुम बैठी हो ?

लाजो—(उसके हाथ को खींचते हुए) चलो भी नयना।

कासनी—अब उठो भी, हमारा तो गला भी बैठ गया तुम्हें बुलाते बुलाते !

नयना—मुझे यहीं बैठी रहने दो।

पारो—देखो सामने मैदान में सभी चरवाहे अपने ढोर डंगर लेकर पहुँच गए हैं।

कासनी—उन के माता पिता हाथों में पाँच पाँच उपले लिए वहाँ जा रहे हैं—पीले साफ़े और बसन्ती चुनरियाँ—मालूम होता है जैसे बसन्ती नदी ठाठें मारती हुई बह रही है।

लाजो—क्या तुम्हारी चुनरी इस नदी की लहर न बनेगी ? अरे, तुमने तो बसन्ती चुनरी भी नहीं पहनी।

पारो—यह क्या अपशकुन है ? उठो खिड़की बन्द करो, बसन्ती चीर पहनो और वसन्त पूजा के लिए चलो।

नयना—मेरी चुनरी वह खूँटी पर लटक रही है और मेरी खिड़की खुली है (**लम्बी साँस लेकर**) यह चार साल से खुली है और न जाने कब तक खुली रहेगी।

पारो—तुम कैसी बातें करती हो ?

लाजो—हम सब तुम्हें लेजाकर रहेंगी।

पारो—उठो नयना ! कहीं बरस भर के बाद तो यह उत्सव आता है। दुख और चिन्ता तो सदा बने रहते हैं, यही एक दिन आता है हँसने हँसाने का।

नयना—मैं इसी दिन आँसू बहाती हूँ !

(नीचे से आवाज़ आती है)

—नयना.....नयना.....लाजो.....

लाजो—उठो नयना, वह देखो सब शोर मचा रही हैं, और तुम चुपचाप बैठी हो यहाँ।

नयना—मुझे न छेड़ो, मुझे यहीं चुप बैठी रहने दो, तन से न सही मन और नयनों से तो मैं तुम्हारे संग हूँगी।

(नीचे से आवाज़ आती है)

—लाजो...

लाजो—मैं तो चली भई, तुम आओ कासनी जल्दी।

पारो—उठो भी नयना, क्या हो गया तुम्हें ?

नयना—जो पिछले साल हुआ था।

कासनी—(हँस कर) और जो उससे पिछले साल हुआ था।

पारो—आखिर तुम कब तक उसकी प्रतीक्षा करती रहोगी ? यह चौथा बरस है और इन चार बरसों से तुम ने इस उत्सव में भाग नहीं लिया, तुम्हारा हिया कैसा पत्थर का हो गया है।

नयना—मेरे हिये में पैठो तो जानो—वह पत्थर है या पानी !

(नीचे से आवाज़ आती है)

—कासनी !

कासनी—सब उतावली हो रही हैं, उठो नयना।

(नीचे से आवाज़ आती है)

—तुम आती हो तो आओ, हम तो जा रही हैं।

[पार्श्व भूमि में फिर गाने का स्वर आरम्भ हो जाता है।]

कासनी—मैं तो चली, तुम इसे लेकर आओ पारो।

[गाने का स्वर ऊँचा हो जाता है और फिर क्षण प्रति क्षण दूर होता जाता है।]

फागन आया रंग भरिया है सखी
सरसों फूली री
सखी री आज
पिया संग खेलो गुलाल मदनसिंह
फागन आया रंग भरया

पारो—नहीं नयना यह ठीक नहीं, इस तरह जीवन नहीं बिताया जा सकता।

नयना—(भावावेश में) किस तरह नहीं बिताया जा सकता। जीवन ?

पारो—न जाने वह कहाँ होगा, कैसे होगा, और इस बात का भी क्या भरोसा है कि अब तक वह तुम्हारे ही नाम की माला जपता होगा।

नयना—मैं बदन सिंह को जानती हूँ, वह भँवरा नहीं, पतंगा है, पंख चाहे जला ले, किन्तु अपना प्रेम न छोड़ेगा।

पारो—पतंगे क्या जोत जोत नहीं उड़ते, तुमतो पागल हो,...

नयना—(करुणा से हँसती है) पतंगा चाहे किसी और से लौ लगा ले पर लौ तो कहीं नहीं जाती, जलती ही रहती है।

पारो—कुन्दन सिंह का ख़याल करो नयना ! बापू उसकी सगाई बाँदनूँ में करना चाहते हैं, किन्तु वह कान ही नहीं देता।

नयना—(चुप रहती है।)

पारो—बदन सिंह का क्या ठिकाना नयनी, इतने बरस हो गए, उसकी कोई खोज खबर नहीं मिली। जाने कहाँ है? जाने कैसे है? और कुन्दन सिंह पल पल छिन छिन.....

नयना—वह आएगा पारो। जिस दिन बापू ने उसे डांटा था और उसने पोपा नगर छोड़ देने का निश्चय किया था उस दिन वह मुझ से इसी खिड़की के नीचे मिला था। मुझे वह साँझ भली भाँति याद है—बसन्त उत्सव हो चुका था, पूरब की ओर नीले नीले बादल घिर आए थे और सूरज की डूबती हुई किरणों ने उनकी कोरों को रंग दिया था। तेज़ बयार बहने लगी थी और पगडंडियों में बिखरी हुई सरसों की मुरझाई पत्तियाँ हवा में उड़ रही थीं, किन्तु, उस के मुख पर लोहे जैसे कठोर निश्चय की छाप थी। उसने कहा था—नयना मैं आऊंगा। मेरी प्रतीक्षा करना, मैं तुम्हारे जोग बन कर आऊंगा।

पारो—और कुन्दन के मन में भी तो यही बात समा गई है। वह भी तो तुम्हारे जोग बनना चाहता है। तुम्हारे लिए उस ने क्या नहीं किया? तुम्हारे लिए वह क्या नहीं कर सकता! कहीं तुम्हारा नाम आ जाता है तो उसका मुख खिल उठता है। कोई तुम्हारी बुराई करे तो उसकी आँखों में लोहू उमड़ आता है। तुम्हारे काम की, तुम्हारे बल-पराकम की, तुम्हारे उद्यम परिश्रम की, तुम्हारी भक्ति भावना की प्रशंसा करते उसकी जीभ नहीं थकती। भाभियाँ सौ सौ बातें बनाती हैं, किन्तु वह सदा तुम्हारी सफ़ाई देता है—"उस जैसी कोई बन कर तो दिखाए"—वह कहा करता है—"बदन भाई को गए आज चार बरस हो गए, पर वह अभी तक उसके नाम की माला जप रही है। उसे किस बात की कमी है—अनाज से उसकी बखारें भरी हैं, रुपये पैसे से उसकी तजौरियाँ अटी पड़ी हैं; उसके संकेत-मात्र पर बीसियों गबरू उसके चरणों

पर अपने प्राण निछावर कर सकते हैं, पर वह किसी की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखती। सच नयना, तुम्हारी प्रशंसा करते करते जैसे उसकी आँखों में चमक आ जाती है। मुझे तो उस पर तरस आया करता है।

नयना—(चुप)

पारो—और बाँदनूँ वालों की बात पर उसे आग लग जाती है। वे भले मानुस हैं, तीन सौ बीघे धरती है उनकी और फिर घर में सब को आनन्दी पसन्द है, किन्तु वह तो तुम्हारी ओर आस लगाए बैठा है। जब तक यह आसा नहीं टूटती, वह किसी दूसरी ओर आँख उठा कर भी न देखेगा।

नयना—(चुप)

पारो—तुम उसे कोरा जवाब भी तो नहीं देतीं। उसे कुछ आसा होगी ही। मेरी बात का बुरा न मानना नयना। उसे अपना लो या जवाब दे दो—कोरा जवाब दे दो। वह मेरा भाई है, किन्तु मैं यह कोरा जवाब पसन्द कर लूँगी।

नयना—मेरी समझ में नहीं आता मैं क्या करूँ? कुन्दन को मैं सदा भाई की तरह मानती आई हूँ। बदन सिंह के जाने के बाद धीरे धीरे वह आगे बढ़ आया है, किन्तु मैं बदन सिंह का ध्यान नहीं छोड़ सकी और तुम मेरी इतनी अच्छी सहेली हो पारो, मैं तुम्हारी इतनी कृतज्ञ हूँ तुम्हारे और कुन्दन के मुझ पर इतने एहसान हैं। और...और ..मैं उसे कैसे ठुकरा दूं।

पारो—तुम उसे कोरा जवाब दे दो।

नयना—जब वह मेरे पास बैठा चुपचाप शून्य में तकता रहता है तो मुझे उस पर दया हो आती है।

पारो—तुम उससे उपेक्षा नहीं करतीं नयना। तुम उसे पसन्द करती हो।

नयना—हम सब बचपन में साथ साथ खेले हैं.....

पारो—तुम उससे घृणा नहीं करतीं नयना, तुम उसे पसन्द करती हो—तुम उससे प्रेम करती हो।

नयना—मैं बदन सिंह को नहीं भूली।

पारो—हम नहीं जानते—हमारे मन में क्या छिपा है ?

नयना—मैं जानती हूँ, मैं बदन सिंह की प्रतीक्षा कर रही हूँ, बरस के एक एक दिन उसकी प्रतीक्षा करती रही हूँ, लेकिन कुन्दन सिंह से मुझे घृणा नहीं, तुम्हारे भाई से मुझे कैसे घृणा हो सकती है ?

पारो—तुम मेरी चिन्ता न करो, अपने मन को टटोलो। यदि वहाँ उसके लिए कोई स्थान है तो उसे अपना लो नहीं तो उसे जवाब दे दो—कोरा जवाब दे दो।

नयना—उसने मेरी इतनी सहायता की है, उसने मुझ पर इतने एहसान किए हैं.....

पारो—तुम उन एहसानों की चिन्ता न करो, तुम अपने दिल को टटोलो।

नयना—मैं सच कहती हूँ, मैं हर साल, साल के एक एक दिन बदन की प्रतीक्षा करती रही हूँ।

पारो—(**क्रोध को बरबस छिपाने की चेष्टा करते हुए**) लेकिन तुम

उसको भी तो नहीं ठुकरातीं। तुम साल के एक एक दिन, दिन के एक एक पल बदन की प्रतीक्षा करो, मैं तुम्हें न रोकूंगी, पर उसे भी आसा के बारीक से तार पर न लटकाए रखो नयना!

[पार्श्व भूमि में दूर स्त्रियों के गाने की अस्पष्ट सी आवाज़ सुनाई देती है]

—मैं तुम से प्रार्थना करती हूँ नयना, उस बारीक तार को भी काट दो।

(महरी आती है।)

महरी—कुन्दन सिंह आए हैं।

पारो—बसन्त पूजा आरम्भ हो गई है, मैं जाती हूँ। तुम कुन्दन सिंह को आज जवाब दे दो। आसा की धीमी धीमी आँच में तिल तिल करके न जलाओ।

(चलने लगती है।)

नयना—(उठ खड़ी होती है) कहाँ चली हो पारो.....

पारो—(जाते हुए) तुम आज उसे कोरा जवाब दे दो।

नयना—(उस के पीछे जाते हुए) तुम कुन्दन सिंह को ले जाओ। तुम उसे अपने साथ ही ले जाओ। वह मुझ से उत्सव में चलने को कहेगा.....

पारो—(चलते चलते) तुम आज उसे कोरा जवाब दे दो। तुम उसे ठुकरा दो। उसे भली भाँति समझा दो कि तुम्हारे द्वार से उसे कुछ न मिलेगा।

[चली जाती है। नयना फिर खिड़की में आ बैठती है और

अन्यमनस्कता से बाहर की ओर देखने लगती है। कुन्दन सिंह प्रवेश करता है।]

कुन्दन—नयना !

नयना—**(चुप रहती है)**

कुन्दन—नयना ! आज मैं तुम्हें लेने आया हूँ।

नयना—**(चुप रहती है)**

कुन्दन—नयना, तुम ने वादा किया था।

नयना—**(चुप रहती है।)**

कुन्दन—तुम आज भी उसी प्रकार उदास और अनमनी सी खिड़की में बैठी हो। तुम्हारी चुनरी उसी तरह खूँटी पर टँगी हुई है। उठो नयना। देखो बसन्त उत्सव अपने पूरे जोबन पर है।

[दूर, मेले से गाने का हल्का हल्का स्वर आता है जो धीरे धीरे ऊँचा होता जाता है।]

रँग रास करो फागन में
हुए पूरन पिछले भाग री

[यह स्वर और मेले में सम्मिलित होने वालों का कोलाहल ऊँचा उठ कर स्टेज पर छा जाता है और फिर सहसा बन्द हो जाता है।]

कुन्दन—देखो, देखो, लड़कियाँ अपने चीर कमर से बाँध रही हैं। क्या तुम्हारे पैरों में तनिक भी गुदगुदी नहीं होती ?

नयना—**(चुप रहती है)**

कुन्दन—तुम्हारे ओंठ उन के सुर में सुर मिलाने को नहीं थर-थराते ? **(दीर्घ विश्वास लेता है)** तुम कितना गाया करती थीं ?

कितना नाचा करती थीं ! तुम्हें क्या हो गया है नयना ? देखो, तुम्हारी सब सहेलियाँ जीवन ऐसे झिलमिलाते वसन्ती कपड़े पहने गा रही हैं, नाच रही हैं, झूले झुला रही हैं और तुम यह उदास उदास वस्त्र पहने इस खिड़की में अनमनी सी बैठी हो।

नयना—तुम जाओ कुन्दन, नाचो गाओ, उत्सव मनाओ।

कुन्दन—मैं तुम्हारे बिना न जाऊँगा, मैं इस बार तुम्हें लेकर जाऊँगा। तुम ने मेरे साथ प्रतिज्ञा की थी।

नयना—नहीं कुन्दन मैं न जाऊँगी।

कुन्दन—तुम कितना गाया करती थीं ! नाचा करती थीं ! तुम्हें क्या हो गया है नयना ? उठो, चुनरी ओढ़ो, यह खिड़की बन्द कर दो।

नयना—(**दीर्घ निश्वास लेती है**) शायद मेरी चुनरी वहीं टँगी रहेगी और मेरी खिड़की सदा खुली रहेगी।

कुन्दन—देखो उपलों का कितना बड़ा ढेर लग गया है। सरसों के हारों से वह इतना ढक गया है कि पीले फूलों का ढेर दिखाई देता है। तुम्हारी सब सहेलियाँ पीले पीले फूल केशों में गूँथे, पीले पीले गजरे हाथों में पहने, पीली पीली चुनरियाँ हवा में उड़ाती हुईं, बसन्त की देवियाँ बनी नाच गा रही हैं। तुम किस प्रकार नाचा करती थीं !

नयना—तुम मुझे यह सब न सुझाओ, यह सब न सुझाओ कुन्दन ! तुम जाओ !

कुन्दन—यदि तुम न जाओगी तो मैं भी न जाऊँगा।

नयना—मैं चार साल से नहीं जा रही।

कुन्दन—मैं भी कहाँ जाता हूँ। हर साल जब यह त्योहार आता है, मैं नयी आस लेकर तुम्हारे द्वारे आता हूँ, पर निरास लौट जाता हूँ। चरवाहे अपने अपने ढोर डंगर लिए मैदान में इकट्ठे होते हैं; बड़े बूढ़े हाथों में उपले लिए होली का ढेर लगाते हैं; स्त्रियाँ सरसों के हार चढ़ाती हैं; ग्वाले बंसरियाँ बजाते हैं; सब नाचते गाते मौज उड़ाते हैं, केवल मैं अकेला और उदास बेलों और वीरानों में भटकता फिरता हूँ।

नयना—न, अब तुम और न भटको! अब तुम और न घूमो! तुम इस उत्सव में भाग लो। मेरी आशा छोड़ दो। तुम्हारी बहिन ने अभी कहा था.....

कुन्दन—मेरी बहिन ने क्या कहा था?

नयना—यही कि आसा के बारीक से तार के सहारे में तुम्हें खींचे लिए आती हूँ।

कुन्दन—मैं अपने आप खिंचा चला आता हूँ।

नयना—पारो ने कहा था—यदि तुमने बदन ही की बाट देखनी है, तो कुन्दन को कोरा जवाब दे दो।

कुन्दन—तुम खुशी से बदन की प्रतीक्षा करो, किन्तु तुमने कहा था.....

नयना—(**शून्य में देखते हुए**) चार बरस पहले बापू ने उसका अपमान किया था, 'तुम उसके जोग तो बनो!' उन्होंने उससे कहा था, बापू परिश्रमी आदमी थे, ज़मीन और जायदाद सारी उन्होंने स्वयं पैदा की थी और बेकार, निकम्मे आदमी को वे पसन्द न करते थे, बदन ने

कहा था—"नयना, यदि तुम्हारे पिता इतना कुछ पैदा कर सकते हैं तो क्या मैं नहीं कर सकता !"

कुन्दन—(चुप रहता है)

नयना—(**उसी तरह शून्य में देखते हुए**) वसन्त की उस सन्ध्या को जब वह बापू से मिल कर मेले से उदास लौटा था, उसने मुझ से कहा था, नयनी, मैं अभी चला जाऊंगा, आज ही पोपा नगर छोड़ दूँगा, और जब तक तुम्हारे जोग न बनंगा, इस गाँव में पाँव न रखूंगा।

कुन्दन—(चुप रहता है)

नयना—उसने कहा था—"नयनी, मैं इसी बसन्त के दिन आऊँगा और इतना कमा कर लाऊँगा कि मुझे तुम्हारे पिता से तुम्हारे लिए कहने की ज़रूरत ही न पड़े।"

कुन्दन—मैं यह सब जानता हूँ।

नयना—वह सूबेदार होकर आयेगा (**प्रसन्न होकर**) वह इतने उपहार लायगा कि मुझसे सम्हाले न सम्हलेंगे.....

कुन्दन—तुम वैसी ही बच्ची हो, अभी तक कल्पना-लोक में बसती हो, भूल जाती हो कि बदन सिंह सेना में भरती होकर गया है.....

नयना—वह ज़रूर आयगा, युद्ध में विजयी होकर आएगा। मैं उसकी बाट देखूंगी।

कुन्दन—तुमने मुझसे कहा था कि यदि इस बसन्त तक वह न आया तो...तो...

नयना—तुम मेरे लिए क्या कुछ नहीं करते रहे कुन्दन ? माता पिता की मृत्यु के बाद तुमने मेरी कितनी सहायता नहीं की ? तुम न होते

तो मैं इस प्रकार रानी बनी न बैठी होती, कहाँ कहाँ के रिश्ते नातेदार इस ज़मीन जायदाद को हड़प करने के लिए नहीं आए ? तुमने उनसे मामले लड़ने में, उनके अत्याचारों का सामना करने में, मेरी सहायता की, ज़मीन जायदाद का प्रबन्ध करने में मेरा हाथ बटाया.....

कुन्दन—तुम क्यों बार बार इसकी याद दिला कर मुझे लज्जित करती हो ?

नयना—और मैं कभी तुम्हें साफ़ जवाब न दे सकी और पारो कहती है—मैं तुम्हारा साहस बढ़ाती रही हूँ, मैं तुम्हें अपने जाल में फँसाती रही हूँ.....

कुन्दन—तुमने कभी मेरा साहस नहीं बढ़ाया, तुम सदा निठुर बनी रही हो.....

नयना—मैं बदन सिंह की राह देखती हूँ.....

कुन्दन—मैंने तुम्हें कब रोका ? बदन सिंह क्या मेरा मित्र न था, यदि आज कहीं वह आ जाए तो मुझसे अधिक प्रसन्नता किसी को न हो।

नयना—(चुप रहती है)

कुन्दन—और कौन जानता है कि मैं इसी लिये तुमसे प्रेम नहीं करता। जब बदन यहाँ था तो हम कितने खुश थे ? वह तुम्हें कितना प्यार करता था। तुम कितनी प्रसन्न थीं ! उसके जाने के बाद तुम उदास रहने लगीं, तुम नहीं जानतीं नयनी तुम्हें इस दशा में देख कर मेरे दिल पर क्या बीतती है ? मुझे कितना दुख होता है ? जब मैं देखता हूँ कि प्रातः के भिनसारे में उठ कर तुम काम में जुट जाती हो और दिन भर खाने पीने की सुध बुध भूल कर काम में रत रहती

हो—अपने शरीर की, अपने कपड़ों की, अपने बालों की चिन्ता नहीं करतीं, नाच गाने, हँसी दिल्लगी, किसी से मतलब नहीं रखतीं, तो मैं दिल मसोस कर रह जाता हूँ और चाहता हूँ कि किसी तरह भी तुम्हें सुख पहुँचा सकूँ, किसी तरह भी तुम्हें प्रसन्न रख सकूँ.....

नयना—(चुप)

कुन्दन—मैंने बदन सिंह की कितनी खोज नहीं की, जब यह पता चला कि वह भर्ती होकर युद्ध में चला गया है तो तुम्हारे दुःख का विचार करके मुझे बड़ी ठेस पहुँची थी। किन्तु इस बात को भी आज तीन बरस हो गए हैं।

नयना—वह अवश्य आएगा। वह इतना कमा कर लाएगा.....

कुन्दन—किन्तु नयना वह सेना में भर्ती होकर गया है।

नयना—इन चार बरसों में प्रति दिन मैं उसे अपने सपनों में देखती रही हूँ, सोते ही में नहीं, जागते में भी, सारा सारा साल इस दिन की प्रतीक्षा करती रही हूँ और बसन्त के दिन इस खिड़की में बैठ कर उसकी बाट देखती रही हूँ—मुझे अब भी ऐसा लग रहा है जैसे वह अभी आकर कहेगा, "नयना, मैं आ गया!"

कुन्दन—(हँसता है) पारो मुझसे कहा करती है, "तुम हवा में बसते हो। एक मद्धम सी आसा के सहारे तुम अपना जीवन नष्ट कर दोगे, तुम इसी तरह पल पल, छिन छिन जलते रहोगे और नयना किसी और के घर चली जाएगी.....

नयना—नयना या बदन सिंह के घर जायगी या.....

कुन्दन—कहो कहो नयना या.....

नयना—(हँसती है)—तुम जानते हो.....

कुन्दन—(**व्यंग से हँसता है**) तो हम दोनों आयु भर कुँवारे रहेंगे। नयना तुम मेरी ओर न देखो, पर ज़रा अपनी ओर तो देखो—तुम्हारे गेहूँ के पौधों को बालियाँ लग आई हैं; तुम्हारी ईख बसन्त की वायु के परस से सरसरा रही है; तुम्हारी सरसों फूल उठी है; तुम्हारे बाग़ों में बहार आ गई है, किन्तु स्वयं तुम पतझड़ के पत्ते की तरह मुरझाई कुम्हलाई बैठी हो, उठो नयना, उठो, मेरे संग चलो। वसन्त उत्सव.....

नयना—कुन्दन तुम जाओ ! मेरे भाग में वसन्त उत्सव देखना नहीं बदा।

कुन्दन—तुमने प्रतिज्ञा की थी कि तुम इस बसन्त को अवश्य चुनरी ओढ़ोगी।

नयना—बसन्ती चुनरी ओढ़ना मेरे भाग में नहीं, बदन सिंह आता तो.....

कुंदन—बदन अब न आएगा.....

(**लाजो हवा के झोंके की भाँति प्रवेश करती है**)

लाजो—बदन सिंह आ गए।

नयना—आ गए.....

(**कासनी भागती आती है**)

कासनी—नयना, बदन सिंह आ गए।

लाजो—(**खिड़की में संकेत करके**) वह देखो वह बच्चों और बच्चियों को उपहार बाँट रहे हैं।

नयना—कहाँ ? कहाँ .....

कासनी—वह.....

नयना—खाकी वर्दी पहने.....

लाजो—वह सूबेदार मेजर बन कर आए हैं, इतने उपहार लाए हैं, इतने.....

कासनी—उनके साथ कई ट्रंक भरे हुए हैं वह देखो, वे सब इधर ही आ रहे हैं।

नयना—कुन्दन, मैं बसन्त उत्सव में चलूंगी। वह मेरी चुनरी उतारो, मैं जूता पहन लूं। मैं उसे रास्ते में जाकर मिलूँगी, इस बार का बसन्त उत्सव.....

कुंदन—(**चुनरी उतार कर देता हुआ**) यह लो चुनरी और मुझे आज्ञा दो।

नयना—तुम मेरे संग न चलोगे कुन्दन; अपने बदन भय्या से मिलने।

कुंदन—नहीं नयना, वसन्त उत्सव देखना शायद मेरे भाग्य में नहीं।

नयना—(**खिड़की बन्द करती है**) हम तुम पहले की भाँति रहेंगे कुन्दन, भाई बहिन.....

कुंदन—नहीं नयना। मैं जाता हूँ। तुमने अपनी खिड़की बन्द कर दी। (**दीर्घ निश्वास भरता है**) अब मेरे कमरे की खिड़की खुली रहेगी किन्तु वहाँ मेरे आकुल प्राणों के सिवा कोई मेरी बाट न देखेगा।

[**चल देता है। नयना किंकर्तव्य विमूढ़ खड़ी है। पर्दा गिरता है।**]

सूखी डाली

पुरुष पात्र	स्त्री पात्र
दादा	बेला—(छोटी बहू)
कर्मचन्द	छोटी भाभी—(बेला की सास,
परेश	इन्दु की माँ)
भाषी	मँझली भाभी
मल्लू	बड़ी भाभी
	मँझली बहू
	बड़ी बहू
	रजवा
	पारो

पहला दृश्य

[मानव प्रगति के इस युग में जब व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को अराजकता की हद तक महत्व दिया जाता है और तानाशाही को 'सभ्य' समाज में अत्यंत निन्दनीय माना जाता है, दादा मूलराज अपने समस्त कुटुम्ब को एक यूनिट (Unit) बनाये, उस पर पूर्ण रूप से अपना प्रभुत्व जमाये, उस महान वट की भाँति अटल खड़े हैं, जिसकी लम्बी-लम्बी डालियाँ उनके आंगन में एक बड़े छाते की भाँति धरती को आच्छादित किये हुए, अगणित घोंसलों को अपने पत्तों में छिपाये, वर्षों से तूफानों और आँधियों का सामना किये जा रही हैं।

वर्षों इस वट की संगति में रहने के कारण दादा वट ही की भाँति महान दिखाई देते हैं। आयु की ७२ सर्दियाँ गर्मियाँ देख लेने पर भी उनका शरीर अभी तक नहीं झुका और उनकी सफेद-दाढ़ी वट की लम्बी-लम्बी दाढ़ियों की भाँति उनकी नाभि को छूती हुई मानो धरती को छूने का निश्चय रखे हुए है।

दादा का बड़ा लड़का १९१४ के महा-युद्ध में सरकार की ओर से लड़ते-लडते काम आया था। इसके बदले में सरकार ने दादा को एक मुरब्बा ज़मीन दी थी। किंतु दादा सरकार की इस कृपा ही पर संतुष्ट नहीं रहे। अपने साहस, परिश्रम, निष्ठा, दूरदर्शिता और रुसूख से उन्होंने एक के दस मुरब्बे बनाये। उनके दो बेटे और पोते, ज़मीन, फार्म डेयरी और चीनी के उस कारखाने के काम की देखभाल करते हैं, जो उन्होने हाल ही में अपनी ज़मीन में लगाया है। सबसे छोटा पोता अभी अभी नायब तहसीलदार होकर इसी कस्बे में लगा है और कुछ ही दिन हुए उसका विवाह लाहौर के एक प्रतिष्ठित तथा सम्पन्न कुल की सुशिक्षित लड़की से हुआ है।

उनके छोटे पोते परेश का नायब तहसीलदार और उनकी छोटी पोतोहू का सुशिक्षित होना, अपने में दो महत्वपूर्ण बातें हैं। पहली से सरकारी हल्कों में उनकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ जाने की सम्भावना है; गाँव में उनका और भी आदर होने लगा है, किंतु साथ ही दूसरी से उनके परिवार के लिए संकट भी उपस्थित हो गया है। उनकी तीनों बहुएँ (जो घर में बड़ी भाभी, मँझली भाभी और छोटी भाभी के नाम से पुकारी जाती हैं) सीधी-सादी महिलाएँ हैं। उन सब में उनकी पोती इन्दु ही (जिसने गाँव के प्रायमरी स्कूल में बड़ी सफलतापूर्वक शिक्षा पायी है) सबसे अधिक पढ़ी-लिखी समझी जाती है। घर में उसकी चलती भी खूब है और दादा अपनी इस पोती से प्यार भी बहुत करते हैं; किंतु इस ग्रैजुएट छोटी पोतोहू (जो घर में छोटी बहू के नाम से पुकारी जाती है) के आने से कुटुम्ब के इस तालाब में इस प्रकार लहरें-सी उठने लगीं जैसे स्थिर पानी में बड़ी सी ईंट गिरने से पैदा हो जाती हैं।

पर्दा इमारत के बरामदे में खुलता है। वास्तव में यह बरामदा घर की स्त्रियों का रांदेवू (Rendezvous— सम्मिलन-स्थल) है। दिन भर इसमें कोलाहल मचा रहता है। कभी घर की स्त्रियाँ धूप लेती हैं; कभी चरखे कातती हैं; कभी गप्पें उड़ाती हैं; कभी लड़ती-झगडती हैं; और कुछ न हो तो स्नानागार में पड़े कपड़े ही धोया करती हैं। यह स्नानागार बाहर के अहाते में है—दायीं दीवार के कोने में जो दरवाजा है, उसके साथ ही बाहर को रसोई आदि से निबट कर, दोपहर के बाद, घर में की दो चार स्त्रियाँ प्रायः रोज वहाँ कपड़े धोया करती हैं और निरंतर 'थप-थप' 'धप-धप' की ध्वनि इस बरामदे में गूँजा करती है।

सामने की दीवार के बायें कोने में एक छोटी-सी गैलरी है जिसमें (दोनों ओर आमने-सामने) पहले मँझली बहू और बड़ी बहू के कमरे हैं

(जिनकी खिड़कियाँ बरामदे में खुलती हैं) फिर मँझली भाभी और बड़ी भाभी के। छोटी भाभी का कमरा (जो इन्दु की माँ और छोटी बहू बेला की सास है) दायीं ओर है जिसका दरवाजा दायीं ओर स्नानगृह को जाने वाले अहाते के दरवाजे की ओर को है। छोटी बहू का कमरा ऊपर की छत पर है और बायीं दीवार में सीढ़ियाँ बनी हैं, जो ऊपर को जाती हैं।

सामने की दीवार के साथ, गैलरी के इधर को दो तख्त बिछे हैं। एक-दो चारपाइयाँ दीवार के साथ खड़ी हैं। एक पुराने फैशन की बड़ी आराम-कुर्सी भी सामने की दीवार के साथ लगी हुई है।

दोपहर होने में अभी काफी देर है। अतः बरामदे में अपेक्षाकृत निस्तब्धता है; केवल गैलरी से स्त्रियों के जल्दी जल्दी बातें करने की आवाज़ आ रही है। पर्दा उठने के कुछ क्षण पश्चात् इन्दु तेजी से गैलरी से निकलती है और बिफरी हुई-सी दायीं तरफ के तख्त पर बैठ जाती है। उसके पीछे-पीछे बड़ी बहू शांत स्वभाव से चलती हुई आती है। इन्दु की भृकुटी चढ़ी है और बड़ी बहू शांत और गंभीर है।]

बड़ी बहू—(इन्दु के कन्धों पर अपने दोनों हाथ रखते हुए) आखिर कुछ कहो भी। क्या कह दिया छोटी बहू ने ?

इन्दु—(चुप)

बड़ी बहू—क्या कह दिया उसने जो इतनी बिफरी हुई हो ?

इन्दु—(क्रोध से) और क्या ईंट मारती ?

बड़ी बहू—कुछ कहो भी.....

इन्दु—मेरे मायके में यह होता है, मेरे मायके में यह नहीं होता (हाथ मटकाकर) अपने और अपने मायके के सामने तो वह किसी को कुछ गिनती ही नहीं। हम तो उसके लिए मूर्ख, गवाँर और असभ्य हैं।

बड़ी बहू--(**आश्चर्य से**) क्या..... !

इन्दु—बैठक के बाहर मिश्रानी खड़ी रो रही थी। मैंने पूछा तो ज्ञात हुआ कि बहू रानी ने उसे काम से हटा दिया है।

बड़ी बहू—(**उसी आश्चर्य से**) काम से हटा दिया है ! भला क्या दोष था उसका ?

इन्दु—दोष यह था कि उसे काम करना नहीं आता।

बड़ी बहू—(स्तम्भित) काम करना नहीं आता !

इन्दु—उस बेचारी ने कहा भी कि मैं दस पाँच दिन में सब कुछ सीख जाऊँगी। भला कै दिन हुए हैं मुझे आपका काम करते ? किन्तु बहूरानी न मानीं। झाड़न उन्होंने उसके हाथ से छीन लिया और कहा कि हट तू, मैं सब कुछ स्वयं कर लूँगी। अभी तक इतना तो सलीका नहीं कि बैठक कैसे साफ की जाती है, पाँच दस दिन में तू क्या सीख जायगी ?

बड़ी बहू—सलीका नहीं..... !

इन्दु—मैंने जाकर समझाया कि भाभी दस साल से यही मिश्रानी घर का काम कर रही है। घर भर की सफाई करती है, बर्तन मलती है, कपड़े धोती है। जाने तुम्हारा कौन-सा ऐसा काम है जो इससे नहीं होता। और फिर मैंने समझाया कि भाभी नौकर से काम लेने की भी तमीज़ होनी चाहिए।

बड़ी बहू—हाँ, और क्या.....

इन्दु—झट से बोली, "वह तमीज तो बस आप लोगों को है" मैंने कहा, तुम तो लड़ती हो। मैं तो सिर्फ़ यह कहना चाहती थी कि नौकर से काम लेने का भी ढंग होता है। इस पर तुनक कर बोली, "और वह

ढंग मुझे नहीं आता, मैंने नौकर जो यहीं आकर देखे हैं।" फिर कहने लगीं, "काम लेने का ढंग उसे आता है, जिसे काम की परख हो। सुबह-शाम झाड़ू देने मात्र से कमरा साफ़ नहीं हो जाता। उसकी बनावट-सजावट भी कोई चीज़ है। न जाने तुम लोग किस तरह इन फूहड़ नौकरों से गुजारा कर लेते हो। मेरे मायके में तो ऐसी गवाँर मिश्रानी दो दिन छोड़, दो घड़ी भी न टिकती।"

बड़ी बहू—कहीं उसने ये सब बातें ?

इन्दु—और कैसे कही जाती हैं—जब से आयी है यही तो सुन रहे हैं—नौकर अच्छे हैं तो उसके मायके में, खाना-पीना अच्छा है तो उसके मायके में, कपड़े पहनने का ढंग आता है तो उसके मायकेवालों को, हम तो न जाने कैसे जी रहे हैं (**नाक भौं चढ़ा कर**) यहाँ के लोगों को खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना कुछ भी नहीं आता। हमारे नौकर गवाँर, हमारे पड़ोसी गवाँर, हम स्वयं गँवार.....

बड़ी बहू—(**चकित विस्मित सिर्फ़ सुनती है**)

इन्दु—मैंने भी कह दिया—क्या बात है भाभी तुम्हारे मायके की ! एक नमूना तुम्हीं जो हो। एक मिश्रानी भी ले आतीं तो हम गवाँर भी उससे कुछ सीख लेते।

[**दायीं दीवार के कमरे से छोटी भाभी (इन्दु की माँ और छोटी बहू बेला की सास) प्रवेश करती है। उसके पीछे-पीछे रजवा है**]

छोटी भाभी—क्यों इन्दु बेटी, क्या बात हुई—यह रजवा रो रही है। कोई कड़ुवी बात कह दी छोटी बहू ने इसे ?

इन्दु—मीठी वे कब कहती हैं जो आज कड़ुवी कहेंगी !

छोटी भाभी—यह आज तुम कैसी जली-कटी बातें कर रही हो ? छोटी बहू से झगड़ा हो गया है क्या ?

रजवा—(**भरे हुए गले से**) माँजी आज उन्होंने बरबस मुझे काम से हटा दिया.....इतने बरस हो गये आपकी सेवा करते, कभी किसी ने इस प्रकार अनादर न किया था। मुझे तो माँजी आप अपने पास ही रखिए। मैं आज से उनका काम न करने जाऊँगी।

छोटी भाभी—वह तो बच्ची है मिश्रानी, तू भी उसके साथ बच्ची हो गयी।

इन्दु—(**मुँह बिचकाकर व्यंग्य से**) जी हाँ, बच्ची है ! रोटी को चोची कहती है। उसे तो बात ही करनी नहीं आती (**क्रोध से**) अपने मायके के सामने तो वह किसी को कुछ समझती ही नहीं और फिर गज़ भर की ज़बान...

बड़ी बहू—बात यह है छोटी माँ, कि छोटी बहू को हमारा खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना कुछ भी पसन्द नहीं। उसे हमसे, हमारे पड़ोस से, हमारी हर बात से घृणा है।

छोटी भाभी—(**चिन्ता से**) फिर कैसे चलेगा ? हमारे घर में तो मिल कर रहना, बड़ों का आदर करना, अपने घर की रूखी-सूखी को दूसरों की चुपड़ी से अच्छा समझना, नौकरों पर दया और छोटी पर.....

(**मँझली बहू बाहर से हँसती हुई प्रवेश करती है**)

मँझली बहू—खिहि...खिहि...खिहि.....हा हा हा,.....

इन्दु—क्या बात है भाभी, जो हँसी के मारे लोट-पोट हुई जाती हो ?

मँझली बहू—खिहि.....खिहि...(**हाथ पर हाथ मारती है**) हा-हा-हा—हा-हा-हा...

(**गैलरी से मँझली भाभी और बड़ी भाभी प्रवेश करती हैं।**)

दोनों—क्या बात है जो आज इतनी 'हा हा' 'ही ही' हो रही है।

इन्दु—यह भाभी हैं कि बस हँसे जा रही हैं; कुछ बताती ही नहीं।

मँझली बहू—मैं कहती हूँ.....

(**फिर हँस पड़ती है**)

बड़ी बहू—आखिर कुछ कहो भी।

मँझली बहू—आज भाई परेश की वह गत बनी कि बेचारे अपना-सा मुँह लेकर रह गये...खिहिहि...हा-हा हा-हा—हा-हा-हा.....

छोटी भाभी—ओ हो, तुम्हारी हँसी भी बहू...

मँझली बहू—मैं क्या करूँ—मैं हँसी के मारे मर जाऊँगी छोटी माँ! अभी-अभी छोटी बहू ने परेश की वह गत बनायी कि बेचारा अपना-सा मुँह लेकर दादाजी के पास भाग गया।

बड़ी बहू
इन्दु }—बात क्या हुई?

मँझली बहू—मैं तो उधर ऊपर सामान रखने गयी थी। बहुत बातें तो मैंने सुनी ही नहीं। बहुत समझ भी नहीं पायी। अंग्रेज़ी में गिटपिट कर रहे थे। छोटी बहू का पारा कुछ चढ़ा हुआ था। इतना मालूम हुआ कि परेश स्नान कर कमरे में गया तो बहूरानी ने

सारा फ़र्नीचर निकाल कर बाहर रख दिया था। परेश ने कारण पूछा। छोटी बहू ने कहा 'मैं इन टूटी-फूटी कुर्सियों और गले-सड़े फर्नीचर को अपने कमरे में न रहने दूँगी।' परेश कहने लगा, "हमारे बुजुर्ग....." बात काट कर छोटी बहू ने कहा, "हमारे बुजुर्ग तो नंगे-बुच्चे जंगलों में घूमा करते थे तो क्या हम भी उनका अनुकरण करें" (हँसती है), और जो सामान पड़ा था वह भी उठा कर बाहर फेंक दिया।

इन्दु—फिर...फिर...

मँझली भाभी—छोटी बहू...

छोटी भाभी—यह तो...

मँझली बहू—परेश ने कहा, "इस फर्नीचर पर हमारे दादा बैठते थे, पिता बैठते थे, चचा बैठते थे। उन लोगों को कभी शर्म नहीं आयी, उन्होंने कभी फर्नीचर के गले सड़े होने की शिकायत नहीं की। अब यदि मैं जाकर इसे रखने पर आपत्ति करूँगा तो दादा कहेंगे कि तहसीलदार होते ही लड़के का सिर फिर गया है। (**हाथ मटका कर**) न भाई! मैं यह बात उनसे नहीं कह सकता।"

मँझली और बड़ी भाभी—हाँ, ठीक ही तो कहा परेश ने।

छोटी भाभी—परेश...मेरा बेटा भला.....

मँझली बहू—तब बहू ने कहा, "तो न कहो—मैं तो इस गले-सड़े सामान को कमरे के पास तक न फटकने दूँगी। इस बेडौल फर्नीचर से तो नीचे धरती पर चटाई बिछा कर बैठे रहना अच्छा है। मेरे मायके में....."

इन्दु—(क्रोध से) बस, उसे तो अपने मायके की पड़ी रहती है, चौबीसों घड़ी।

मँझली बहू—और छोटी बहू ने अपने मायके के बड़े-बड़े कमरों और उनके बहुमूल्य फर्नीचर का बखान किया। (हँसती है) और महाशय परेश की एक भी न चलने दी। बेचारे भीगी बिल्ली बने दादाजी के पास चले गये—खि हि हि...खि हि हि...

(हँसती है। दूसरी भी उसके साथ हँसती हैं।)

—मैं तो चुपके से चली आयी (मुँह बिचका कर) ज़बान है छोटी बहू की या कतरनी...और फिर जब अंग्रेजी बोलने लगती है तो कुछ समझ में ही नहीं आता। परेश बेचारा तो अपना-सा मुँह लेकर रह जाता है। जाने तहसीलदार कैसे बन गया।

इन्दु—बस ज़बान ही ज़बान है। बात तो जब है जब काम भी हो। एक काम को कहो तो सौ नाक-भौंह चढ़ाती है। दादाजी ने चार कपड़े धोने को कहा था, वे तो पड़े गुसलखाने में गल रहे हैं।

छोटी भाभी—गुसलखाने में गल रहे हैं! तू उठा क्यों न लायी उन्हें। जा भाग कर उठा ला और फटक कर आँगन में डाल दे। मैं बहू को समझा दूँगी—इस तरह कैसे चलेगा.....(और भी चिन्ता से).....परेश ने समझाया नहीं उसे?

इन्दु—परेश की तो जैसे वहाँ बड़ी सुनवायी होती है।

(हँसती है)

मँझली बहू—वह मलमल के थान और अबरों* की बात याद है न—अभी तक पड़े हुए हैं। कह-कह कर हार गये परेश महाशय।

---

* अबरा—लिहाफ के ऊपर का कपड़ा।

ईरानी ने हाथ तक न लगाया उन्हें और वे शरम के मारे ले जाते हीं दादाजी के पास। कचहरी में होंगे तहसीलदार, घर में तो अभिक्तों से भी गये बीते हो जाते हैं।

(हँसती है, इन्दु और बड़ी बहू भी हँसती हैं ।)

छोटी भाभी—पर दादाजी के कपड़े.....

बड़ी भाभी—तुम भी बहिन बस...क्या इतना पढ़ लिख कर छोटी बहू कपड़े धोयेगी !

इंदु--क्यों ! उसके हाथ नमक मिट्टी के हैं जो गल जायँगे ।

(बाहर से दादा के हुक्का गुड़गुड़ाने की आवाज आती है)

छोटी भाभी—तुम चलो इन्दु—कपड़े फटक कर अहाते में डाल दो। शायद उन्हें जरूरत हो। मांगेंगे तो.....मैं बहू को समझा दूँगी।

(पर्दा गिरता है)

दूसरा दृश्य

[बही बरामदा। दायीं ओर के तख्त पर बिस्तर बिछा हुआ है। दीवार के साथ तकिया लगा है। दादा आराम से तकिये के सहारे बैठे हुक्का पी रहे हैं। उनका मँझला लड़का कर्मचन्द पास बैठा उनके पाँव दाब रहा है। हुक्का पीते-पीते दादा बच्चों को बाहर अहाते में खेलते हुए देख रहे हैं। स्नान-गृह से नल के जल्दी-जल्दी चलने की आवाज़ आ रही है। शायद कोई बच्चा उसे चला रहा है क्योंकि कर्मचन्द की भृकुटी तन गयी है।

पर्दा उठने के कुछ क्षण बाद तक नल के चलने और हुक्के के गुड़-गुड़ाने की आवाज आती रहती है। फिर--]

कर्मचंद—(**क्रोध से**) बस करो जगदीश! क्या खट-खट लगा रखी है? ज़रा आराम करने दो। अभी-अभी खाना खाकर बैठे हैं कि तुम.....

दादा—(हुक्के की नली को हटा कर उधर देखते हुए) नहीं नहीं, खेलने दो बच्चों को। (**फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं**) बच्चे...(**हँसते हैं**) वट की टूटी डाल लाकर आँगन में लगा दी और उसे पानी दे रहे हैं—(**हँसते हैं**) नहीं जानते कि पेड़ से टूटी डाली जल देने से नहीं पनपती। (**हुक्का गुड़गुड़ाते हैं फिर नली छोड़ कर कर्मचन्द से**) मैं कहा करता हूँ न बेटा कि एक बार वृक्ष से जो डाली टूट गयी, टूट गयी, उसे लाख पानी दो, उसमें वह सरसता न आयेगी और हमारा यह परिवार वट के इस महान् पेड़ की भाँति है.....

कर्मचंद—लेकिन शायद अब इस पेड़ से एक डाली टूट कर अलग हो जाय।

दादा—(चिन्ता से) क्या कहते हो ? कौन अलग हो रहा है ?

कर्मचंद—शायद छोटा अलग हो जाय।

दादा—परेश ! पर क्यों,—उसे क्या कष्ट है ?

कर्मचंद—कष्ट उसे तो नहीं, छोटी बहू को है।

दादा—मुझे किसी ने बताया तक नहीं। यदि कोई शिकायत थी तो उसे वहीं मिटा देना चाहिए था। हलकी-सी खरौंच भी, यदि उस पर तत्काल दवाई न लगा दी जाय, बढ़ कर एक बड़ा घाव बन जाती है और वही घाव नासूर हो जाता है, फिर लाख मरहम लगाओ ठीक नहीं होता।

कर्मचंद—मैं अच्छी तरह तो नहीं जानता, पर जहाँ तक मेरा विचार है छोटी बहू के मन में दर्प की मात्रा ज़रूरत से कुछ ज़्यादा है। मैंने वह मलमल के थान और रजाई के अबरे लाकर दिये थे न ! और सब ने तो रख लिये पर सुना है कि छोटी बहू को पसन्द नहीं आये। अपने मायके के घराने को शायद वह इस घराने से बड़ा समझती है और इस घर को घृणा की दृष्टि से देखती है।

दादा—बेटा, बड़प्पन बाहर की वस्तु नहीं—बड़प्पन तो मन का होना चाहिए। और फिर बेटा, घृणा को घृणा से नहीं मिटाया जा सकता। बहू तभी पृथक् होना चाहेगी जब उसे घृणा के बदले घृणा दी जायगी। लेकिन यदि उसे घृणा के बदले स्नेह मिले तो उसकी समस्त घृणा धुँधली पड़ कर लुप्त हो जायगी। (**हुक्का गुड़गुड़ाते हैं**) और महानता भी बेटा, किसी से मनवायी नहीं जा सकती, अपने व्यवहार से अनुभव करायी जा सकती है। ठूँठ वृक्ष आकाश को छूने पर भी अपनी महानता का सिक्का हमारे दिलों पर उस समय तक नहीं बैठा

सकता, जब तक अपनी शाखाओं में वह ऐसे पत्ते नहीं लाता जिनकी शीतल सुखद छाया मन के समस्त ताप को हर ले और जिसके फूलों की भीनी-भीनी सुगन्ध हमारे प्राणों में पुलक भर दे।

भाषी—(**बाहर से**) दादाजी, मल्लू और जगदीश ने मेरा वट का पेड़ उखाड़ दिया (**मल्लू से लड़ते हुए चीख़चीख़ कर**) क्यों उखाड़ा तूने मेरा पेड़—क्यों उखाड़ा... ?

दादा—पेड़ ! (**हँसते हैं**) बच्चे !! (**हँसते हैं**) ठहरो भाषी, लड़ो मत बेटा। जाना कर्मचन्द जरा हटाना इन दोनों को.....

(**कर्मचन्द जाता है। दादा फिर हुक्के की नली मुँह से लगा लेते हैं— परेश नीची नज़र किये प्रवेश करता है**)

दादा—आओ बेटा परेश, वह मैंने एक दो कपड़े भेजे थे न, तनिक देखना बहू ने उन्हें धो डाला है या नहीं। धो डाले हों तो ले आओ ज़रा। फिर तुम से बात करूँगा।

परेश—मैं लज्जित.....

दादा—नहीं धुले तो फिर धुल जायँगे बेटा ! आओ इधर बैठो मेरे पास। मैं तो तुम्हें बुलाने ही वाला था। आओ-आओ इधर आकर बैठो।

[**फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं। परेश चुपचाप आकर दादा के पास बैठ जाता है**]

दादा—(**हुक्का गुड़गुड़ाना छोड़ कर**) मुझे कर्मचन्द से अभी पता चला है कि तुम्हारी बहू को रजाई के अबरे और मलमल का थान

पसन्द नहीं आये। देखो बेटा, तुम उसे शहर ले जाओ और उसकी पसन्द की चीजें ले दो।

परेश—मैं...मैं...लेकिन मैंने समझा था कि और सब ने थान और अबरे रख लिये हैं।

दादा—हाँ, और तो सबने रख लिये हैं, पर छोटी बहू को शायद ये डिजाइन पसन्द नहीं आये। तुम्हारे ताऊ ठहरे पुराने समय के आदमी। वे नये फैशन की चीजें खरीदना क्या जानें? जभी तो मैं कहता हूँ कि छोटी बहू को बाज़ार ले जाओ। वह स्वयं अपनी पसंद की चीजें ले आयेगी।

परेश—जी.....

दादा—(**हुक्के का एक कश लगा कर**) और मैं सोचता था कि अब बहू आ गयी है तो इन्दु का दहेज तैयार करने में भी सहायता देगी।

परेश—जी, मैं इसीलिए आया था.....

दादा—हाँ, हाँ, कहो झिझकते क्यों हो?

परेश—जी, बात यह है कि इस घर में बेला का मन नहीं लगता।

दादा—इतनी जल्दी उसका मन कैसे लग सकता है बेटा? अभी कै दिन हुए हैं उसे यहाँ आये? और फिर बेटा मन लगता नहीं, लगाया जाता है।

परेश—वह मन लगाती ही नहीं।

दादा—तो हमें उसका मन लगाना चाहिए। वह एक बड़े घर से

आयी है। अपने पिता की इकलौती लड़की है। कभी नाते-रिश्तेदारों में नहीं रही। इस भीड़-भाड़ से वह घबराती होगी। इतने कोलाहल से वह ऊब जाती होगी। हम सब मिल कर इस घर में उसका मन लगाएँगे।

परेश—उसे कोई भी पसंद नहीं करता। सब उसकी निन्दा करते हैं। अभी मेरे पास माँ, बड़ी ताई, मँझली ताई, मँझली भाभी, बड़ी भाभी, इन्दु, रजवा सब आयी थीं, सब उसकी शिकायत करती थीं--- ताने देती थीं कि तू उसके हाथ बिक गया है, तू उसे कुछ नहीं समझाता और इधर वह उन सब से दुःखी है, कहती है—सब मेरा अपमान करती हैं, सब मेरी हँसी उड़ाती हैं, मेरा समय नष्ट करती हैं। मैं ऐसा महसूस करती हूँ जैसे मैं परायों में आ गयी हूँ। अपना एक भी मुझे दिखाई नहीं देता.....आप मेरी मानें तो . ...

दादा—हाँ, हाँ, कहो.....

परेश—बात यह है जी कि वह आज़ादी चाहती है। दूसरों का हस्तक्षेप, दूसरों की आलोचना उसे पसंद नहीं... ... !

[दादा सिर्फ़ हुक्का गुड़गुड़ाते हैं]

—वह समझती है कि वह छोटी बहू है इसलिए सब उसकी आलोचना करना, उसे आदेश देना अपना कर्तव्य समझते हैं...

(दादा सिर्फ़ हुक्का गुड़गुड़ाते हैं)

—और वह अपनी पृथक् गृहस्थी बसाना चाहती है। जहाँ उसे कोई टोकनेवाला न हो। जहाँ वह स्वेच्छापूर्वक अपना जीवन बिता सके। वह चाहती है कि यदि बाग वाला मकान उसे मिल जाय तो वह सुख और शान्ति से रहे। मैं तो सदैव यहाँ बना न रहूँगा, कुछ ही

दिनों की बात है। मेरी तब्दीली हो जायगी। उतने दिन को यदि आप बाग़ वाले मकान का प्रबन्ध कर दें !...उसकी सारी उद्विग्नता, अन्यमनस्कता और तिलमिलाहट में उसकी यही इच्छा काम करती है। अब मैं उसे कैसे समझाऊँ.....

दादा—(कुछ क्षण चुप चाप हुक्का गुड़गुड़ाते हैं फिर) हूँ! (**खाँसते हे**) यों तो इस झंझट से छुटकारा पाने का सरल उपाय यही है कि तुम्हें बागवाला मकान दे दिया जाय—वह पड़ा भी बेकार है और अभी मैं उससे किसी तरह का काम भी लेने का इरादा नहीं रखता, पर तुम जानते हो बेटा, मेरे जीते जी यह असम्भव है। (**फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं**) मैं जब अपने परिवार का ध्यान करता हूँ तो मेरे सामने वट का महान् पेड़ घूम जाता है (**खाँसकर**) शाखाओं, पत्तों, फलों, फूलों से भरा-पुरा (**हुक्के के एक-दो कश लगाते हैं**) और फिर मेरी आँखों के सामने इस महान् वृद्ध की डालियाँ टूटने लगती हैं और वह केवल ठूँठ रह जाता है (**स्वर धीमा, जैसे अपने आप से कह रहे हैं**) और मैं सिहर उठता हूँ। न बेटा, मैं अपने जीते जी यह सब न होने दूँगा। तुम चिंता न करो। मैं सबको समझा दूँगा—घर में किसी को तुम्हारी पत्नी का तिरस्कार करने का साहस न होगा। कोई उसका समय नष्ट न करेगा। ईश्वर की अपार कृपा से हमारे घर सुशिक्षित, सुसंस्कृत बहू आयी है तो क्या हम अपनी मूर्खता से उसे तंग कर देंगे ? तुम जाओ बेटा—किसी प्रकार की चिन्ता को मन में स्थान न दो। मैं कोई न कोई उपाय ढूँढ़ निकालूँगा तुम विश्वास रखो वह अपने आपको परायों से घिरी अनुभव न करेगी। उसे वही आदर सत्कार मिलेगा जो उसे अपने घर में प्राप्त था।

परेश—जैसा आप उचित समझें।

दादा—और देखो, तुम स्वयं भी इस बात का ध्यान रखना, तुम्हारी किसी बात से उसका मन न दुखे ! कोई भी ऐसी बात न करो जिसे वह अपना अपमान समझे ।

(परेश चलने को होता है ।)

—और तुम उसे साथ ले जाकर नगर से सब चीज़ें खरीद लाओ । शेष की चिंता तुम न करो, मैं कोई न कोई रास्ता अवश्य निकाल लूँगा ।

परेश—जैसी आपकी इच्छा ।

[चला जाता है । दादा फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं । हुक्के के कश लम्बे हैं जो इस बात के साक्षी हैं कि दादा हुक्का पीने के साथ-साथ सोच रहे हैं]

दादा—**(जैसे अचानक उन्हें कुछ सूझ गया हो)** रजवा..... रजवा.....**(फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं । रजवा नहीं आती, फिर आवाज़ देते हैं)**—रजवा.....रजवा .....

रजवा—**(दूर से)** जी आयी ।

(भागती हुई सी प्रवेश करती है)

दादा—छोटी बहू के अतिरिक्त सबको मेरे कमरे में भेज दो । कहो कि सब काम छोड़कर मेरे पास आयें. **(रजवा जाने लगती है) और** सुनो, कोई न रहे—सब से कहना, कुछ क्षण के लिए अवश्य यहाँ आ जायँ ।

रजवा—जी मैं अभी जाकर सबसे कहे देती हूँ ।

[चली जाती है । दादा फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं । नल से किसी

के कपड़े धोने की आवाज़ आने लगती है। दादा और भी लम्बे-लम्बे कश लेते हैं। धीरे-धीरे कुटुम्ब के प्राणी आने लगते हैं। बालक और युवक तख्त और चारपाइयों पर बैठते हैं और स्त्रियाँ बरामदे के फर्श पर—रजवा उनके बैठने के लिए मोढ़े और चटाइयाँ लाकर बिछा देती है।]

दादा—(हुक्का पीना छोड़ कर) इन्दु कहां है वह दीखती नहीं ?

[फिर हुक्का गुडगुड़ाने लगते हैं और एक नज़र सब को देखते हैं। रजवा स्नानगृह को जानेवाले दरवाजे में जाकर इंदु को आवाज़ देती है। कपड़े धोने का स्वर जो इस बीच में निरंतर आता रहा है, सहसा बंद हो जाता है]

इंदु—(बाहर से) जी आयी (अन्दर आकर) मैं नल पर थी। कपड़े धोने में लगी थी।

दादा—(एक कश खींचकर) बैठो बेटा (एक-दो क्षण तक हुक्का गुड़गुड़ाते है) मैंने आज तुम सब को एक विशेष अभिप्राय से बुलाया है। मुझे यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ कि छोटी बहू का मन यहाँ नहीं लगा।

इंदु—दादाजी.....

दादा—इन्दु बेटा, मुझे अपनी बात कह लेने दो। मुझे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि छोटी बहू का मन यहाँ नहीं लगा। दोष उसका नहीं, दोष हमारा है। वह एक बड़े घर की बेटी है, अत्यधिक पढ़ी-लिखी है। सबसे आदर पाती और राज करती आयी है। यहाँ वह केवल छोटी बहू है। यहाँ उसे हर एक का आदर करना पड़ता है; हर एक से दबना पड़ता है; हर एक का आदेश मानना पड़ता है—यहाँ उसका व्यक्तित्व दबकर रह गया है। मुझे यह बात पसंद

नहीं (कुछ क्षण हुक्का गुड़गुड़ाते हैं फिर-) बेटा बड़ा वास्तव में कोई उमर से या दर्जे से नहीं होता। बड़ा तो बुद्धि से होता है, योग्यता से होता है। छोटी बहू उम्र में न सही, अक्ल में हम सब से निश्चय ही बड़ी है। हमें चाहिए कि उसकी बुद्धि से, उसकी योग्यता से लाभ उठायें। मेरी इच्छा है कि उसे यहाँ वही आदर-सत्कार मिले जो उसे अपने घर में प्राप्त था। सब उसका कहना मानें, उससे परामर्श लें और मैं प्रसन्न हूँगा यदि उसका काम भी तुम लोग आपस में बाँट लो और उसे पढ़ने-लिखने का अधिक अवसर दो। उसे अनुभव ही न हो कि वह किसी दूसरे घर में, किसी दूसरे वातावरण में आ गयी है।

(फिर कुछ क्षण हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, फिर)

—बेटा यह कुटुम्ब एक महान् वृक्ष है। हम सब इसकी डालियाँ हैं। डालियों ही से पेड़-पेड़ है और डालियाँ छोटी हों चाहे बड़ी, सब उसकी छाया को बढ़ाती हैं। मैं नहीं चाहता, कोई डाली इससे टूट कर पृथक् हो जाय। तुम सदैव मेरा कहा मानते रहे हो। बस यही बात मैं कहना चाहता हूँ.....यदि मैंने सुन लिया—किसी ने छोटी बहू का निरादार किया है; उसकी हँसी उड़ाई है; या उसका समय नष्ट किया है तो इस घर से मेरा नाता सदा के लिए टूट जायगा.....अब तुम सब जा सकते हो।

[फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं। सब धीरे-धीरे जाने लगते हैं।]

—इन्दु बेटा, और मँझली बहू, तुम ज़रा बैठो।

[दोनों के अतिरिक्त शेष सब चले जाते हैं।]

—मँझली बहू तुम अपनी हँसी को उन लोगों तक ही सीमित रखो बेटा, जो उसे सहन कर सकते हैं। बाहर के लोगों पर घर में बैठकर

हँसा जा सकता है, किंतु घर के लोगों को तब तक हँसी का निशाना बनाना ठीक नहीं, जब तक वे पूर्णतया घर का अंग न बन जायँ। और इन्दु बेटा, तेरी छोटी भाभी बड़ी बुद्धिमती, सुशिक्षित और सुसंस्कृत है; तुझे उसकी हँसी उड़ाने, उससे लड़ने झगड़ने के बदले उसका आदर करना चाहिए, उससे ज्ञानार्जन करना चाहिए। तुम दोनों को मैं इस विषय में विशेषकर सावधान रहने का आदेश करता हूँ।

(फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं फिर क्षण भर बाद)

—अब तुम जाओ और देखो फिर मुझे शिकायत का अवसर न मिले **(गला भर आता है।)** यही मेरी आकांक्षा है कि सब डालियाँ साथ-साथ बढ़ें, फलें, फूलें, जीवन की सुखद, शीतल वायु के परस से झूमें और सरसाएँ। विटप से अलग होनेवाली डाली की कल्पना ही मुझे सिहरा देती है।

(फिर हुक्का गुड़-गुड़ाने लगते हैं।)

इन्दु—हमें क्षमा कीजिए दादाजी, हमारी ओर से आप को कभी शिकायत का अवसर न मिलेगा।

(दोनों चली जाती हैं। दादा कुछ देर हुक्का गुड़-गुड़ाते हैं फिर बाहर खेलते हुए बच्चों को आवाज़ देते हैं।)

दादा—भाषी, मल्लू, जगदीश, आओ, आज तुम्हें एक कहानी सुनाएँ.....वट के पेड़ और उसके बच्चों की.....

भाषी—(दरवाजे से झाँक कर) हम सुन चुके हैं। हम नहीं आते। हर बार वही कहानी.....

मल्लू—चाँद राजा, तारा राजा की सुनाओ तो आयें। हर बार वही कहानी (**नकल उतार कर**) एक था वट का पेड़.....

(**हँसते हुए अदृश्य हो जाते हैं**)

दादा—(**हँसते हैं**) यही कहानी—यही कहानी तो कुटुम्ब का, समाज का, राष्ट्र का निर्माण करती है। यही तो जीवन को सुदृढ़, विशाल और महान् बनाती है।

(**हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं—पर्दा गिरता है।**)

तीसरा दृश्य

[वही बरामदा—दोनों तख्त पूर्ववत खिड़कियों के बराबर रखे हुए हैं और दो चारपायाँ वैसे ही दीवार के साथ लगी खड़ी हैं। हाँ, कुर्सी मध्य में आ गई है—ज्ञात होता है कि इस पर छोटी बहू—बेला—बैठी धूप ले रही थी—किंतु पर्दा उठने पर वह आकुलता से बरामदे में घूमती हुई दिखायी देती है—एक हाथ में पुस्तक है, मानो पढ़ते-पढ़ते कोई विचार आ जाने से उठकर घूमने लगी हो।]

बेला—(अपने आप से) मैं किन लोगों में आ गयी हूँ ? ये कैसे लोग हैं.....कुछ भी तो समझ नहीं सकी।.....आज कुछ हैं कल कुछ। पल में तोला पल में माशा।.....इनका कुछ भी तो पता नहीं चलता।

(फिर सोचती हुई धीरे-धीरे घूमती है।)

—गर्म होते हैं तो आग बन जाते हैं और नर्म होते हैं तो मोम से भी कोमल दिखायी देते हैं। आज जिस बात को बुरा कहते हैं कल उसी की प्रशंसा करते हैं—मैं तो तंग आगयी इन लोगों से।

[जाकर फिर कुर्सी पर बैठ जाती है और पुस्तक खोल लेती है।
अन्दर गैलरी से उसकी सास, छोटी भाभी आती हैं।]

छोटी भाभी—तुम ठीक कहती थीं बेटी—इस रद्दी सामान से बैठक, बैठक नहीं, कबाड़ी का गोदाम दिखायी देती थी। सोचती थी कि यह सामान इतने दिनों से इस कमरे में पड़ा है, कुछ ऐसा बुरा भी नहीं; और इस पर इतनी देर से सब बैठते आ रहे हैं; कहीं दादाजी बुरा न मानें, पर अच्छा किया तुमने जो वह सब उठा दिया। मैंने परेश से कह दिया है—तुम उसके साथ जाकर अपनी रुचि का सामान खरीद

लाओ। यह सब मैं रजवा से कहकर सुरेश के कमरे में भिजवा देती हूँ। कई बार निगोड़ी इन्हीं कुर्सियों के लिए वह मुझसे रूठ चुका है।

बेला—आप बैठिए माँजी.....

छोटी भाभी—बस तुम बैठो बेटी। मैं तो यों ही तुम्हें इधर बैठे देखकर चली आयी। अनाज पड़ा है, उसे फटकना है; मिर्चें पड़ी हैं उन्हें कूटना है; मक्खन कई दिनों का इकट्ठा हो गया है, उसका घी बनाना है,—बीसों दूसरे काम हैं, और दिन ढल रहा है। मैं सोचती थी, तुमने मेरी बात का बुरा न माना हो। वास्तव में बेटी, रजवा मेरे पास आकर फूट-फूट कर रो दी। नौकरानी समझदार, विश्वसनीय और आज्ञाकारी है, किंतु जो काम उसने कभी किया ही न हो, वह उससे किस प्रकार हो सकता है?

बेला—(उठती हुई) आप बैठिए तो.....

छोटी भाभी—**(उसके कंधों पर हाथ रख कर उसे बैठाते हुए)** बैठो-बैठो बेटी, कष्ट न करो। मैं तुम्हारा अधिक समय नष्ट न करूँगी। मैं तो केवल तुमसे उसकी सिफ़ारिश करने आयी थी। भावुक स्त्री है, जल्दी ही बात का बुरा मान जाती है। तुम यों करना कि ज्यों ही नया फ़र्नीचर आजाये, अपने सामने लगवाकर रजवा को एक बार झाड़ना-बुहारना सिखा देना। फिर वह ग़लती नहीं करेगी। न हो तो कभी मुझे बता देना। मैं उसे समझा दूँगी।

बेला—नहीं, नहीं आप.....

सास—तुम पढ़ी-लिखी समझदार हो बेटी, इसलिए तुमसे इतना कह दिया है। यों तुम न चाहो तो कोई दूसरा प्रबंध हो जायगा। तुम इस बात की तनिक भी चिंता न करो।

(चलने को उद्यत होती है)

बेला—आप बैठिए तो सही.....

सास—नहीं-नहीं, तुम अपने पढ़ो मैं वृथा तुम्हारा समय नष्ट न करूँगी

(चली जाती है)

बेला—(पुस्तक बन्द कर के लम्बी साँस लेती हुई जैसे अपने आप) इन लोगों की कुछ भी तो समझ नहीं आती। ये माँजी एक दम कैसे बदल गयीं! अभी परसों मुझे इसी रजवा के लिए डाँट रही थीं इनका कुछ भी तो पता नहीं चलता!

[फिर पढ़ने लगती है। बड़ी बहू और मँझली भाभी बाहर के दरवाजे से प्रवेश करती हैं]

मँझली भाभी—क्यों बेटी, अब रजवा कुछ काम सीख गयी है या नहीं? (ज़रा हँसती है) बुढ़िया है तो सयानी.....

बड़ी बहू—आपने इन्दु से ठीक ही कहा था। हमें वास्तव में काम की परख नहीं, पर अब.....

बेला—आइए, इधर बैठिए, चारपाई सरका लीजिए

मँझली भाभी—(वैसे ही खड़े-खड़े) मैंने एक अनुभवी नौकरानी खोज लाने के लिये कह दिया है जो नये फैशन के बड़े घरों में काम कर चुकी हो। वास्तव में बहू, दादाजी पुराने नौकरों के हक में हैं—ये दयानतदार होते हैं और विश्वसनीय। हमारे पास पीढ़ी-दर-पीढ़ी काम करते आ रहे हैं। इस रजवा की सास भी यहीं काम करती थी, अब रजवा की बहू भी यहीं काम करती है.....

बड़ी बहू—मैं कहती हूँ बहिनजी, आप रजवा की बहू को ही अपने पास क्यों नहीं रख लेतीं.....उसकी वयस भी कम है और काम भी वह जल्दी सीख जायगी।

बेला—(**अन्यमनस्क-सी**) नहीं, नये नौकर की आवश्यकता नहीं। रजवा काम सीख जायगी, (**कुछ चिढ़ कर**) पर आप खड़ी क्यों हैं ?

मँझली भाभी—हम तुम्हारा हर्ज न करेंगी.....

बेला—(**और भी चिढ़ कर**) मेरा कुछ हर्ज नहीं होता।

बड़ी बहू—हम आपसे छोटी हैं, वर्ग में भी और बुद्धि में भी.....

बेला—(**रुआँसी आवाज में**) आप मुझे क्यों काँटों में घसीटती हैं.....आप मेरे साथ क्यों परायों का सा व्यवहार करती हैं.....

(**उठ खड़ी होती है**)

बड़ी बहू—बैठिए-बैठिए, मँझली भाभी, आप भी बैठिए.....

बेला—मैं चलती हूँ.....

(**रुलाई को रोककर आँखों पर रूमाल रखे जल्दी-जल्दी चली जाती है।**)

मँझली भाभी—(**जैसे अपने आपसे**) परायों का सा.....

(**बाहर से मँझली बहू के क़हक़हे की आवाज़ आती है—दूसरे क्षण वह इन्दु और पारो के कन्धे पर झूलती हुई बाहर के दरवाज़े से आती है**)

इन्दु—सच.....

मँझली बहू—(**हँसी रोक कर**) और क्या मैं झूठ कह रही हूँ। मैंने अपनी इन दो आँखों से देखा (**हँसती है**) मलावी ने सारी की

सारी छत फावड़े से खोद डाली और बंसीलाल महाशय मुँह देखते रह गये।

(सब ठहाका मार कर हँस पड़ती हैं)

बड़ी बहू—भई मुझे भी बताना...क्या किया मलावी ने...सच।

[मँझली बहू चारपाई बिछा कर उसमें धँस जाती है। उसकी एक ओर इन्दु और दूसरी ओर पारो बैठ जाती हैं मँझली भाभी कुर्सी पर बैठती है और बड़ी बहू खड़ी रहती है]

मँझली भाभी—(कुर्सी को ज़रा खिसका कर समीप होते हुए) बंसीलाल के सामने उखाड़ कर फेंक दी छत मलावी ने ?

मँझली बहू—मैं कहती हूँ, मुँह देखते रह गये बंसीलाल महाशय, ताका किये मुटर-मुटर.....

(सब ठहाका लगाती हैं।)

बड़ी बहू—अरे कौन सी छत खोद डाली, यह तो बताओ.....

मँझली बहू—रसोई की और कौन सी। अभी दो घंटे हुए कि राज-मज़दूर छत डालकर गये थे और बंसीलाल कारीगरों और मज़दूरों से निपट कर अभी दूकान को गया था कि आ गयी उधर से मलावी मारोमार करती। जाने किसने उसे जाकर बताया कि तुम्हारे देवर ने अपनी रसोई पर छत डाल ली है। लेके फावड़ा बस सारी की सारी छत उसने खोद डाली। बंसीलाल तब पहुँचे जब अन्तिम कड़ी भी उखड़ चुकी थी। तब क्या करते—बस ताका किये मुटर-मुटर.....

(मँझली भाभी को छोड़ कर सब हँसती हैं)

मँझली भाभी—पर बंसीलाल का लड़का.....

मँझली बहू—गली के सिरे पर खड़ा खम ठोंक रहा है।

(जघा पर हाथ मार कर बताती है कि कैसे खम ठोक रहा है)

इंदु—खम ठोंक रहा है ?

मँझली बहू—(क़हक़हा लगाती है) सच, खम ठोंक रहा है और हवा ही में ललकार रहा है कि मैं ड्योढ़ी की छत ख़ोद डालूँगा—मैं मकान को खण्डहर बना दूँगा। मैं यह करूँगा—मैं वह करूँगा और इधर मलावी कमर कसे खड़ी है कि आये जो माई का लाल है, रक्खे पाँव घर के भीतर.....

(सब हँसती हैं)

इंदु—(अंगुली ओठों पर रख कर) शश...श...श भाभी आ रही हैं।

(हँसी एक दम बन्द हो जाती है; सन्नाटा छा जाता है—बेला एक हाथ में बन्द किताब थामे धीरे-धीरे सीढ़ियां उतरती है।)

बेला—क्यों जीजी, आप चुप हो गयीं (जरा हँसकर) किस बात पर क़हक़हे लगाये जा रहे हैं ?

मँझली भाभी—(कुर्सी से उठ कर) यों ही हँस रही थी। आओ इधर कुर्सी पर बैठो।

बेला—नहीं-नहीं आप बैठिए। मैं इधर तख्त पर बैठ जाती हूँ।

मँझली बहू—(जल्दी से उठ कर) आइए-आइए, आप इधर बैठिए।

इंदु और पारो—(दोनों चारपाई से उठ जाती हैं) आइए-आइए, आप इधर बैठिए।

[फिर नीरवता छा जाती है जिसमें एक प्रकार की घुटन है। बेला बाहर की ओर चल पड़ती है।)

इंदु—बैठिए भाभीजी, आप चली क्यों ?

बेला—(मुड़ कर क्लान्त तथा भारी स्वर में) मैं तो उधर ही जा रही थी। यों ही जाते-जाते खड़ी हो गयी। मैं आपकी हँसी में बाधा नहीं डालना चाहती। (खिन्न हँसी के साथ) आप हँसिए, क़हक़हे लगाइए।

(चुपचाप अहाते के दरवाजे से निकल जाती है)

मँझली बहू—मैं कहती थी न कि इस ओर न आओ ! मेरी मुई आदत हुई हँसने की।

इंदु—अब एक यही स्थान था बैठने को.....

मँझली बहू—हम हँसती हैं तो हँसती हैं दिल से और छोटी बहू के अध्ययन में बाधा पड़ती है। मैं कहती हूँ दादाजी को यदि पता चल गया कि हमारे यहाँ बैठने से छोटी बहू के पढ़ने में खलल आता है तो वे.....

इंदु—किंतु यही एक जगह थी पर्दे वाली.....

मँझली बहू—तुम भूल गयीं हमें ही तो दादाजी ने खास तौर पर सतर्क रहने को कहा था (क़हक़हा लगा कर हँस पड़ती है।) मैं कहती हूँ चलो मेरे कमरे में.....

इंदु—मुझे तो दादाजी के कपड़े धोने हैं, मैं चली।

(जल्दी-जल्दी बाहर की ओर चली जाती है)

मँझली भाभी—ठीक है। तुम लोग अब यहाँ इतना न बैठा करो

(बड़ी बहू से) हम तो बहू गोदाम में जा रही थीं, चलो गेहूँ छटवा लें। छोटी बहिन तो कब की गयी हुई है। फिर तो अस्त हो जायगा दिन, और महरियाँ चली जायँगी।

बड़ी बहू—मैं तो फँस गयी मँझली की बातों में...चलो...चलो।

(दोनों चली जाती हैं)

मँझली बहू—मैं कहती हूँ पारो चल मेरे कमरे में। वहाँ चल कर बैठ।

पारो—मुझे तो जाना है भाभी। लल्ला आ गया होगा, न मिली तो चिल्लायेगा।

मँझली बहू—(अपने आप से) यह छोटी बहू तो उकाब-सी आकर सबको डरा गयी।

[हँसती है। बाहर से बड़ी भाभी आती हुई दिखायी देती है, भाग कर उसके पास जाती है।]

—बड़ी भाभी, सुनी तुमने मलावी की बात? खोद डाली उसने सारी की सारी छत।

(क़हक़हा लगाती है)

बड़ी भाभी—मलावी ने छत खोद डाली.....

मँझली बहू—(उसे अपने साथ लेकर कमरे की ओर जाती हुई) हाँ, हाँ, अभी राज-मजदूर छत बना कर गये थे कि आ गयी मलावी मारो-मार करती.....

बड़ी भाभी—पर.....

मँझली बहू—चलो मेरे कमरे में। वहाँ चल कर सब बताती हूँ। यहाँ तो छोटी बहू की पढ़ाई में बाधा पड़ती है।

[उसे साथ लेकर अपने कमरे की ओर जाती है। बाहर से परेश और बेला बातें करते प्रवेश करते हैं]

बेला—(आर्द्र कण्ठ से) आप मुझे मेरे मायके भेज दीजिए। मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं अपरिचितों में आ गयी हूँ। कोई मुझे नहीं समझता, किसी को मैं नहीं समझती।

परेश—आखिर बात क्या है ? कुछ कहो भी।

बेला—मैं जाती हूँ तो सब खड़ी हो जाती हैं। बड़ी भाभी, मँझली भाभी और माँजी तक ! मेरे सामने कोई हँसता नहीं। कोई मुझसे अधिक समय तक बात नहीं करना चाहता। सब मुझसे ऐसा डरती हैं जैसे मुर्गी के बच्चे बाज से। अभी अभी सब हँस रही थीं, ठहाके पर ठहाके मार रही थीं, मैं गयी तो सब ऐसे सन्न रह गयीं जैसे भरी सभा में किसी ने चुप की सीटी बजा दी हो।

परेश—पर इसमें.....

बेला—और कोई मुझे काम को हाथ लगाने नहीं देता। तनिक सा भी काम करने लगूँ तो सब भागी आती हैं। सब मेरा इस प्रकार आदर करती हैं, मानो मैं ही इस घर में सब से बड़ी हूँ।

परेश—मैं नहीं समझता तुम क्या चाहती हो ? तुम्हें शिकायत थी—कोई तुम्हारा आदर नहीं करता, अब सब तुम्हारा आदर करते हैं। तुम्हें शिकायत थी तुम्हें सब से दबना पड़ता है, अब सब तुमसे दबते हैं। तुम्हें शिकायत थी तुम सब का काम करती हो, अब सब तुम्हारा काम करते हैं। आदर, सत्कार, आराम—न जाने तुम और क्या चाहती हो ?

(तेजी से सीढ़ियाँ चढ़ जाता है)

बेला—(निढाल होकर कुर्सी में धँस जाती है) न जाने मैं क्या चाहती हूँ, (सिसकने लगती है) न जाने मैं क्या चाहती हूँ, पर मैं इतना जानती हूँ कि मैं यह सब आदर, सत्कार, सुख, आराम नहीं चाहती।

[बाहों में मुँह छिपा कर सिसकती है। इन्दु हाथ में कुछ मैले कपड़े लिए हुए बाहर के दरवाजे से प्रवेश करती है]

इंदु—भाभीजी.....

बेला—(उसी प्रकार चुप बैठी रहती है।)

इंदु—(बेला के कन्धे को हिला कर) भाभीजी.....भाभीजी.....

(बेला मुंह ऊपर उठाती है)

इंदु—हैं, भाभी जी, आप तो रो रही हैं !

बेला—(आँखें पोंछ कर) नहीं मैं रो नहीं रही पर इन्दु परमा के लिए मुझे 'जी' 'जी' करके न बुलाया करो।

इन्दु—लो भला यह कैसे हो सकता है। आप मुझसे बड़ी हैं और फिर आप मुझसे कहीं अधिक पढ़ी-लिखी हैं।

बेला—पहले तो तू मुझे यों 'जी' 'जी' करके नहीं बुलाया करती थी ?

इन्दु—मैं तो मूर्ख ठहरी भाभीजी। दादाजी ने कहा था...

बेला—(सहसा चौंक कर) दादा जी ने क्या कहा था ?

इन्दु—उन्होंने सबको समझाया था कि घर में सबको आपका आदर करना चाहिए।

बेला—किंतु उन्होंने यह सब क्यों कहा ? मैंने तो कभी उनसे इस बात की शिकायत नहीं की ?

इन्दु—शायद छोटे भय्या ने उनसे यह कहा था कि आपका जी यहाँ नहीं लगता आप बागवाले.....

बेला—ओह ! यह बात है।

इन्दु—दादाजी और सब कुछ सह सकते हैं—किसी का पृथक् होना नहीं सह सकते—"हम सब एक महान् पेड़ की डालियाँ हैं" वे कहा करते हैं " और इससे पहले कि कोई डाली टूट कर अलग हो, मैं ही इस घर से अलग हो जाऊँगा" और उन्होंने हम सबको समझाया कि हम आपका आदर करें, काम करें और आपको पढ़ने पढ़ाने का समय दें।

बेला—पर मैं तो आदर नहीं चाहती और मैं तो तुम सबके साथ मिल कर काम करना चाहती हूँ।

इन्दु—यह कैसे हो सकता है भाभीजी.....

बेला—(दीर्घ श्वास छोड़ती हुई) आप लोगों ने मुझे कितना ग़लत समझा और मैंने आप लोगों को कितना...

इन्दु—आप कैसी बातें करती हैं। लाइए कपड़े लाइए। मैं दादाजी के कपड़े धोने जा रही हूँ, साथ ही आपके भी फटक लाऊँ।

बेला—(चुप सोचती है)

इन्दु—भाभीजी.....

बेला—(जैसे मन-ही-मन उसने किसी बात का निश्चय कर लिया हो) मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगी, मैं भी तुम्हारे साथ कपड़े धोऊँगी।

इन्दु—दादाजी नाराज़ न होंगे.....

बेला—मैं दादाजी से कह दूँगी

इन्दु—भाभीजी . ...

बेला—मुझे केवल भाभी कहा कर, मेरी प्यारी इन्दु

इन्दु—(प्यार से भरे हुए गले के साथ) भाभी...

बेला—चल कपड़े धोएँ । धूप निकली जा रही है

इन्दु—पर कपड़े.....

बेला...मेरे कपड़े आज रजवा ने धो दिये थे, शलवार कमीज ही तो थी। चल मैं तेरी सहायता करूँगी।

[दोनों चली जाती हैं कुछ क्षण बाद बरामदे में कपड़े धोने का शब्द आने लगता है। दादा गैलरी की ओर से हुक्का गुड़गुड़ाते गुड़गुड़ाते, मल्लू की अँगुली थामे प्रवेश करते हैं।]

दादा—हाँ, बेटा तुम्हें मेले में ले चलेंगे। जो तू कहेगा वही खिलौना ले देंगे।

मल्लू—मैं तो उड़न खटोला लूँगा

(सहसा बाहर के दरवाजे के पास जाकर ठिठक जाते हैं)

दादा—(आश्चर्य से) हैं ! छोटी बहू.....

इन्दु—(बाहर से) मैंने तो बहुतेरा कहा पर भाभी मानी नहीं।

दादा—छोटी बहू, इधर आ बेटी !

(शरमाई हुई बेला दरवाजे के पास आ खड़ी होती है)

बेटा—कपड़े धोना तुम्हारा काम नहीं। पढ़-लिख कर...

इन्दु—(जो अपनी भाभी के साथ ही आ खड़ी हुई है) मैंने बहुतेरा कहा पर भाभी मानी...

दादा—(जिन्हें इन्दु के स्वर का अनादर अच्छा नहीं लगा) इन्दु, तुझे इतनी बार कहा है कि आदर से.....

बेला—(भावावेश के कारण रुँधे हुए कण्ठ से) दादाजी, आप पेड़ से किसी डाली का टूट कर अलग होना पसन्द नहीं करते पर क्या आप यह चाहेंगे कि पेड़ से लगी-लगी वह डाल सूख कर मुरझा जाय...

(सिसक उठती है, हुक्के की गुड़गुड़ाहट एक दम बन्द हो जाती है)

[पर्दा सहसा गिर पड़ता है]